राष्ट्रमंडल विकास कार्यक्रम एवं परिपेक्ष्य

(एम० फिल० की उपाधि हेतु जमा लघु शोध-प्रबन्ध)

उमेश उपाध्याय

अन्तरराष्ट्रीय राजनीति, संगठन एवं निरस्त्रीकरण केन्द्र
अन्तरराष्ट्रीय अध्ययन स्कूल
जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय
नयी दिल्ली - 110067

1986

आमुख

तीव्र गति से आर्थिक विकास सभी राष्ट्रों का घोषित लक्ष्य है। तृतीय विश्व के पिछड़े और गरीब देशों के संदर्भ में आर्थिक विकास का प्रश्न और भी महत्वपूर्ण है क्योंकि उनके लिए यह प्रश्न भुखमरी, गरीबी और बेकारी जैसी मूलभूत चिन्ताओं के साथ जुड़ा हुआ है। लेकिन आज यह किसी भी राष्ट्र का एकान्तिक मुद्दा नहीं रह गया है। वर्तमान शताब्दी के दौरान राष्ट्रों की पारस्परिक निर्भरता में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। कोई भी देश केवल अपने में सीमित रहकर विकास नहीं कर सकता। विकासशील देशों के पास पूंजी, तकनीकी और विशेषज्ञता का जबर्दस्त अभाव है। इसके कारण उनकी विकास गति प्रायः अत्यन्त मंथर रहती है। अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर इन देशों की सहायता से ही साधनों के इस अभाव की पूर्ति हो सकती है। विदेशी पूंजी की उपलब्धता इनकी विकास प्रक्रिया के लिए जीवन-मरण का प्रश्न है। उधर अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की संरचना ठीक इसके प्रतिकूल है। वर्तमान असंतुलित और एकतरफा अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था में साधनों और स्रोतों का प्रवाह विकासशील देशों से विकसित देशों की ओर है। इससे इन देशों की आर्थिक समस्याएं उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती हैं। 1944 में ब्रेटनवुड में स्वीकार की गयी अन्तरराष्ट्रीय व्यवस्था शोषण पर आधारित है। इसके अन्तर्गत असमानता और असन्तुलन ने एक संस्थागत रूप धारण कर लिया है। इसी के चलते तृतीय विश्व के विकासशील देश इस व्यवस्था में आमूल परिवर्तन कर नयी अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की स्थापना की मांग कर रहे हैं।

द्वितीय विश्व युद्धोत्तर काल में तृतीय विश्व के देशों में अपने आर्थिक हितों के प्रति एक नयी जागरूकता का प्रादुर्भाव हुआ है। विभिन्न अन्तरराष्ट्रीय मंचों जैसे संयुक्तराष्ट्र, गुटनिरपेक्ष आन्दोलन और राष्ट्रमंडल

के माध्यम से इन देशों ने अपनी गुहार को विकसित राष्ट्रों तक पहुँचाने का प्रयास किया है । राष्ट्रमंडल जो कि एक समय अंग्रेजी साम्राज्य के वैभव का प्रतीक था, की संरचना में इस दौरान व्यापक परिवर्तन हुए हैं तथा नयी अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की स्थापना के लिए तृतीय विश्व के संघर्ष के साथ इसने अपने आप को पूरी तरह जोड़ लिया है । तृतीय विश्व के आर्थिक संदर्भों के साथ राष्ट्रमंडल की सक्रियता केवल मौखिक भर नहीं रही है अपितु यथासंभव क्रिया के स्तर पर भी इसने स्वयं को इन संदर्भों से जोड़ा है । राष्ट्रमंडल सचिवालय के तत्वावधान में तकनीकी सहायता के लिए राष्ट्रमंडल कोष (C F T C) द्वारा चलाए जा रहे अनेकानेक विकास प्रकल्प तृतीय विश्व के आर्थिक विकास में उसकी क्रियात्मक सक्रियता के अनुपम नमूने हैं ।

प्रस्तुत लघु शोध प्रबन्ध में राष्ट्रमंडल द्वारा तृतीय विश्व के आर्थिक विकास में भागीदारी - जोकि सोच और क्रिया दोनों स्तरों पर है ---- का सर्वेक्षण करने का प्रयास किया गया है । क्योंकि राष्ट्रमंडल के वर्तमान स्वरूप और संरचना में उसके इतिहासकी एक विशिष्ट भूमिका रही है अत: प्रथम अध्याय में राष्ट्रमंडल के इतिहास को कुरेदने का प्रयास किया गया है । द्वितीय अध्याय में तृतीय विश्व द्वारा नयी अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की स्थापना की मांग के साथ राष्ट्रमंडल की सहभागिता के बिन्दुओं पर प्रकाश डाला गया है । इस मांग के प्रति राष्ट्रमंडल के दृष्टिकोण का भी इसी अध्याय में विश्लेषण किया गया है । राष्ट्रमंडल द्वारा चलाए जा रहे विभिन्न विकास कार्यक्रमों की चर्चा तृतीय अध्याय में की गयी है । चतुर्थ अध्याय में राष्ट्रमंडल परिप्रेक्ष्य और उसकी संभावनाओं को रेखांकित किया गया है ।

कहना न होगा कि मेरे निर्देशक और गुरु प्रोफेसर सुरेश चन्द्र गंगल, निदेशक गांधी अध्ययन कार्यक्रम अन्तर्राष्ट्रीय अध्ययन स्कूल ने मेरे इस शोध के हर स्तर पर न केवल मुझे राह दिखायी है अपितु ऐसी सामग्री भी उपलब्ध करायी है जिसके अभाव में यह शोध प्रबन्ध पूरा हो ही नहीं सकता था । विषय चुनने से शोध प्रबन्ध पूरा करने तक वे मुझे हर संभव सहायता देते रहे हैं । समझ में नहीं आता कि उनके प्रति अपनी कृतज्ञता मैं किस प्रकार व्यक्त करूं ?

माँ और पिताजी के प्रति क्या कोई कृतज्ञता ज्ञापन कर सकता है ? मेरा सम्पूर्ण अध्ययन क्या, सभी कुछ उन्हीं का तो देय है । यह लघु शोध प्रबन्ध उन्हीं के आशीर्वाद का फल है । इसी तरह बड़े भैया और भाभी तथा अन्य सभी भाभी-भाइयों के स्नेह ने मुझे अपना कार्य करने की क्षमता प्रदान की है । सतीश जोकि कभी मेरा अनुज और कभी अग्रज बन जाता है के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करना मेरा कर्तव्य है । सुशील भाई साहब व ऊषा भाभी जी इस कार्य के दौरान मुझे जो सहायता देते रहे हैं उनका धन्यवाद शब्दों में नहीं किया जा सकता ।

डाक्टर वेद प्रताप वैदिक जिन्होंने हिंदी में उच्चस्तरीय शोध की सरणि का एक मानदंड कायम किया है, से मुझे यह शोध हिंदी में लिखने की प्रेरणा मिली । उनके प्रति आभार कैसे व्यक्त करूं ? आदरणीय शरद द्विवेदी जी के सहयोग के बिना तो यह कार्य पूरा होना असंभव ही था । उनका धन्यवाद ।

राष्ट्रमंडल सचिवालय, लंदन, ने जिस तत्परता के साथ मुझे अध्ययन सामग्री भेजी वह प्रशंसनीय है । राष्ट्रमंडल सचिवालय के अधिकारियों और जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय - पुस्तकालय के कर्मचारियों के प्रति

भी मैं आभार व्यक्त करता हूँ। अपने टाइपिस्ट श्री जगदीश चन्द्र का भी मैं आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने बड़े मनोयोग से इस पांडुलिपि को टाइप किया।

सभी मलूक मित्रों, अनुराग, अजय त्यागी एवं राजकुमार जी द्वारा समय-समय पर दी गयी सलाहों के प्रति भी मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

इस समस्त कार्य के पीछे प्रेरणा रूप में रही सीमा के लिए मैं क्या कहूँ ? उसके लिए धन्यवाद बहुत हल्का शब्द है।

अन्त में उन सब भूलों व गलतियों का दोष मैं अपने सिर लेता हूँ जो प्रमाद, आलस्य अथवा अज्ञानता वश हो गयी होंगी।

उमेश उपाध्याय

विषय सूची

क्रम संख्या		विषय क्रम	पृष्ठ संख्या
(1)	प्रथम अध्याय	राष्ट्रमंडल : परिचय और विकास	1
(2)	द्वितीय अध्याय	राष्ट्रमंडल और नयी अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था	21
		-नयी अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था के विचार का विकास	21
		-राष्ट्रमंडल और नयी अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था	34
(3)	तृतीय अध्याय	राष्ट्रमंडल विकास कार्यक्रम	55
(4)	चतुर्थ अध्याय	निष्कर्ष	85
(5)		सन्दर्भ सूची	91

प्रथम अध्याय

राष्ट्रमंडल : परिचय और विकास

राष्ट्रमंडल - जो एक समय ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के नाम से जाना जाता था - की औपचारिक शुरुआत यद्यपि 1926 के बेलफोर फार्मूले से मानी जा सकती है परन्तु इसका बीजारोपण उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही हो गया था । 1857 ब्रितानी साम्राज्य के विस्तार का शीर्ष बिन्दु था । इस समय तक भारत पूरी तरह से रानी के अधीन हो गया था परन्तु उसके ठीक दस वर्ष बाद से ही ब्रितानी साम्राज्य का सूर्य ढलना आरम्भ हो गया । 1867 में ब्रितानी संसद ने ब्रितानी उत्तरी अमेरिका अधिनियम पारित किया जिसके तहत कनाडा को स्वायत्त शासन की प्राप्ति हुई थी । 1914 तक आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड एवं दक्षिण अफ्रीका में भी स्वायत्त शासन की स्थापना हो गयी । यद्यपि ये देश अभी भी साम्राज्य के अंग थे व रानी इनकी सर्वोच्च शासिका थी परन्तु आन्तरिक मामलों में ये स्वतन्त्र थे । लेकिन विदेश नीति के मामलों में अभी भी इंग्लैंड के मत को अधिक महत्व दिया जाता था । सभी उपनिवेशों एवं स्वायत्त राज्यों ने प्रथम विश्व युद्ध में ब्रितानी साम्राज्य के नाम से हिस्सा लिया परन्तु एक ओर जहाँ उपनिवेशों में स्वायत्त शासन की माँग जोर पकड़ रही थी वहीं स्वायत्त राज्यों में अपनी "स्वायत्तता" की सीमा रेखाओं को स्पष्टता से रेखांकित करने की इच्छा भी बलवती हो रही थी । यहाँ तक कि अब ब्रितानी साम्राज्य के संबोधन को भी इन स्वायत्त राज्यों में पसन्द नहीं किया जा रहा था । दक्षिण अफ्रीका के प्रधानमंत्री स्मट्स इसे 'ब्रितानी राष्ट्रमंडल' कहना अधिक पसन्द करते थे ।[1] पर इस नाम का प्रयोग इससे पहले भी किया जा चुका था । साम्राज्य के देशों में पारस्परिक संबंधों की व्याख्या

---

(1) जे० बी० वाटसन, <u>एम्पायर टू कामनवेल्थ</u>, लंदन, 1971, पृ०-7

करते हुए 1884 में लार्ड रोज़बेरी ने इसे राष्ट्रों का राष्ट्रमंडल कहा था। परन्तु यह राष्ट्रमंडल क्या है ? इसमें राष्ट्रों के मध्य संबंधों का क्या आधार है ? तथा इसकी संघटना क्या है ? इसके बारे में कोई स्पष्टता नहीं थी। लार्ड रोज़बेरी व स्मट्स दोनों ने ही इसे एक ढीले ढाले रूप में प्रयोग किया था। ब्रितानी संस्थाओं एवं वहां से विकसित व्यवस्थाओं की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह रही है कि वे एक सतत विकास प्रक्रिया का परिणाम है और उनके विकास में परम्पराओं ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। स्वयं ब्रितानी राजव्यवस्था अधिकांशत विकसित है। संयोगों व परम्पराओं के मिश्रण से विकसित ये व्यवस्था पर्याप्त लचीली है। ब्रितानी प्रजातन्त्र में राजा का पद इसका एक अन्यतम उदाहरण है। ब्रितानी जनमानस की यह परम्परा-प्रियता राष्ट्रमंडल के इतिहास में भी स्पष्ट परिलक्षित होती है। राष्ट्रमंडल अधिकांशत विकसित हैं व अंशत: निर्मित। इसके निर्माण के लिए वर्साय या सैन फ्रांसिस्को जैसा कोई सम्मेलन नहीं बुलाया गया और न ही इसकी स्थापना के लिए कोई अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि हुई। इसके इतिहास पर दृष्टि डालने से पता चलता है कि संयोग व आकस्मिकताओं ने इसके विकास में अनन्य योग दिया है।

प्रथम विश्व युद्ध ने ब्रितानी साम्राज्य की स्थिति पर दूरगामी प्रभाव डाले। युद्ध की समाप्ति के बाद एक ओर जहां उपनिवेशों में ब्रितानी न्याय व वायदों के प्रति मोहभंग हुआ एवं जनमानस में अपनी राष्ट्रीय अस्मिताओं के प्रति जागरुकता का दौर शुरु हुआ वहीं

साम्राज्य के स्वायत्तशासी देशों में भी साम्राज्य के साथ अपने राजनीतिक संबंधों को स्पष्ट रूप से परिभाषित करने की इच्छा प्रकट होने लगी। निकोलसमैन्सर्ग के शब्दों को यदि प्रयोग किया जाए तो स्वायत्त राज्यों में "अपनी अलग राष्ट्रीय पहचान" के लिए आग्रह बढ़ रहा था।[2] युद्ध के बाद होने वाले शाही सम्मेलन व युद्ध पूर्व हुए शाही सम्मेलनों में एक साफ अन्तर नज़र आने लगा था। युद्ध पूर्व शाही सम्मेलनों में ब्रितानी प्रधानमंत्री की हैसियत एक प्रमुख की हुआ करती थी वह ब्रितानी निर्णयों की सूचना मात्र अन्य प्रधानमंत्रियों को देता था। ब्रितानी विदेश नीति ही साम्राज्य की विदेश नीति का पर्याय थी।[3] उस पर बहस करने का अधिकार सामान्यतया साम्राज्य के स्वायत्त राज्यों के प्रधानमंत्रियों को नहीं था। परन्तु 1918 के पश्चात् होने वाले शाही सम्मेलन गुणात्मक रूप में भिन्न हो गए। वर्साय के शान्ति सम्मेलन में स्वायत्त राज्यों के प्रधानमंत्रियों ने समानता के स्तर पर भाग लिया था न कि साम्राज्य के प्रतिनिधियों की हैसियत से। अपनी समानता के इस दर्जे को लिखित रूप में परिभाषित करने की मांग 1923 के शाही सम्मेलन में कनाडा के प्रधानमंत्री मैकेन्जी किंग ने उठाई जिसकी परिणति 1926 के शाही सम्मेलन में बैलफोर फार्मूले [4] की स्वीकृति के रूप में हुई। इस फार्मूले के अनुसार स्वायत्त शासी राज्यों की परिभाषा देते हुए कहा गया था कि ये ब्रितानी साम्राज्य के भीतर स्वायत्त समुदाय हैं जो किसी भी

---

(2) निकोलस मैन्सर्ग, द कामनवेल्थ एक्सपीरियंस, लंदन, 1969 पृ0 21

(3) वही पृ0 10

(4) ब्रिटेन के पूर्व प्रधानमंत्री श्री ए0 जे0 बैलफोर द्वारा दिया गया फार्मूला जिसके अन्तर्गत पहली बार लिखित रूप में स्वायत्त राज्यों को समानता का दर्जा मिला।

तरह से अपने आन्तरिक अथवा बाह्य मामलों में एक दूसरे के अधीन नहीं है।

1931 में रैम्जे मैकडोनाल्ड की सरकार ने इन स्वशासी राज्यों की इस स्थिति को कानूनी दर्जा देने के लिए ब्रितानी संसद में एक बिल रखा जिसमें बेलफोर फार्मूले को भी जोड़ लिया गया। यही बिल वेस्ट मिनिस्टर की संविधि (स्टैट्यूट आफ वेस्ट मिनिस्टर) कहलाता है। इस संविधि के अनुसार छह राज्यों - कनाडा, आस्ट्रेलियाई राष्ट्रमंडल, न्यूजीलैण्ड, दक्षिण अफ्रीकी संघ, आयरिश स्वतंत्र राज्य व न्यू फाउण्डलैण्ड को "ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के स्वैच्छिक सदस्यों" के रूप में स्वीकार किया गया। परन्तु जहां इन श्वेत राज्यों को ब्रितानी संसद ने समानता का दर्जा दे दिया था वहीं साम्राज्य के अन्य भागों को यह अधिकार नहीं दिया गया। उनके विषय में ब्रितानी सरकार का रुख अभी तक अनुदार था। उदाहरण के लिए 1931 में ही भारत की समस्या को सुलझाने के लिए लंदन में दूसरा गोलमेज सम्मेलन आयोजित हुआ था। इसके बावजूद कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस 1929 के अपने लाहौर अधिवेशन में 'पूर्ण स्वराज' को अपना लक्ष्य घोषित कर चुकी थी, गांधी जी ने कांग्रेस के प्रतिनिध की हैसियत से इस सम्मेलन में भारत के लिए राष्ट्रमंडल के भीतर ही स्वायत्त शासन की मांग की।(5)

एक समय ऐसा था, जब मैं ब्रिटिश प्रजा होने पर गौरव करता था, ब्रिटिश प्रजा कहलाने में मुझे गौरवकी प्राप्ति होती थी लेकिन कई वर्षों से मैंने स्वयं को ब्रिटिश प्रजा कहना छोड़ दिया है, मैं प्रजा

---

(5) सुभाष चन्द्र बोस, <u>द इंडियन स्ट्रगल</u>, 1920-42, नयी दिल्ली 1964, पृ0 219

के बजाय विद्रोही कहलाने में प्रसन्न होऊंगा । लेकिन अब मैंने कामना की है कि मैं अब भी नागरिक कहलाना पसन्द करुंगा । साम्राज्य का नागरिक नहीं बल्कि राष्ट्रमंडल का, एक ऐसी भागीदारी का, अगर वह संभव है तो, और अगर भगवान की ऐसी इच्छा हो तो, जो कभी न टूटने वाली भागीदारी होगी। एक राष्ट्र की दूसरे पर लादी हुयी भागीदारी नहीं" (6) परन्तु ब्रितानी सरकार ने इस मांग की उपेक्षा की और भारत को स्वायत्त शासन की स्थापना का अधिकार नहीं दिया । अतः कई लेखकों का यह विचार कि ब्रिटेन ने स्वेच्छा से साम्राज्य को छोड़ा असन्तुलित व पूर्वाग्रहपूर्ण हैं । हां इतना कहा जा सकता है कि श्वेत उपनिवेशों के संबंध में ब्रितानी सरकार ने कुछ उदारता से काम लिया । परन्तु यह उदारता भी स्वेच्छा से अधिक मजबूरी का ही परिणाम थी । अस्तु ।

इस सदी के तीसरे दशक में अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर मन्दी का भयानक दौर शुरु हुआ । सभी देशों ने अपनी आन्तरिक व बाह्य आर्थिक नीतियों में, इस मन्दी से उबरने के लिए विस्तृत परिवर्तन किए । ब्रिटेन सहित अन्य साम्राज्यवादी देश अभी तक एडम स्मिथ की निर्बाध व्यापार नीति का अनुगमन कर रहे थे क्योंकि यह उनके आर्थिक हित में थी । परन्तु परिवर्तित विश्व आर्थिक वातावरण में निर्बाध व्यापार की नीति ब्रितानी आर्थिक हितों का संवरण नहीं कर सकती थी क्योंकि विश्व बाजार में अमेरिका एवं जापान के उत्पादों से उसे कड़ी चुनौती मिल रही थी ।

---

(6) मोहनदास करमचन्द गांधी, <u>कलेक्टेड वर्क्स आफ महात्मा गांधी</u> भाग XLVIII 1971 पृ० 18

अतः उसने आयात पर प्रतिबन्ध लगाने आरम्भ किए। 1932 में ब्रितानी संसद ने आयात कर अधिनियम पारित किया परन्तु राष्ट्रमंडल के उत्पादों पर कोई कर नहीं लगाया गया। अर्थात् साम्राज्य से आने वाली वस्तुओं को सुविधा दी गई। इसके पीछे यह विचार था कि साम्राज्य के स्तर पर उस आर्थिक संकट से निपटा जाए। (ब्रितानी) राष्ट्रमंडलीय स्तर पर आर्थिक सहयोग का आरम्भ यहीं से होता है। इस हेतु 1932 में ओटावा (कनाडा) में एक सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन का उद्देश्य (ब्रितानी) राष्ट्रमंडल द्वारा सामूहिक रूप से मंदी का सामना करने के लिए कार्यक्रम बनाना था। यद्यपि पारस्परिक आर्थिक हितों में टकराव के कारण इस सम्मेलन में कोई व्यापक समझौता नहीं हुआ तथापि इसमें करीब एक दर्जन द्विपक्षीय व त्रिपक्षीय व्यापार समझौते हुए। कोई बड़ी उपलब्धि न होते हुए भी यह सम्मेलन अपने आप में महत्त्वपूर्ण था क्योंकि राष्ट्रमंडलीय स्तर पर आर्थिक सहयोग के प्रयासों की यह प्रथम कड़ी था।

उधर इस शताब्दी के आरम्भ में ही उपनिवेशों में एक तरह से आने वाले इतिहास की भूमिका स्वरूप राष्ट्रीय जागृति का उदय हो रहा था। इन भागों में अपनी राष्ट्रीय पहचान और अस्मिता के प्रति सुगबुगाहट स्पष्ट रूप से दिखाई देती थी। प्रथम विश्व युद्ध के अनुभवों ने इस भावना के विकास में उत्प्रेरक का कार्य किया। विश्व युद्ध के पश्चात् अधिकांश उपनिवेशों में राष्ट्रीय आन्दोलनों की एक लहर सी चल पड़ी। भारतीय उपमहाद्वीप, जहां कि साम्राज्य का सर्वाधिक सशक्त

राष्ट्रीय आन्दोलन उठ खड़ा हुआ, के अतिरिक्त गोल्ड कोस्ट, नाइजीरिया कीनिया, न्यासालैण्ड, त्रिनिदाद, बारबाडोस, जमैका, गुयाना, मिस्र आदि सभी भागों में राष्ट्रीयता की लहरें आन्दोलनों के रूप में उत्पन्न हो रही थी। यद्यपि द्वितीय विश्व युद्ध तक इनमें से अधिकांश को स्वायत्त राज्य का दर्जा भी नहीं दिया गया था परन्तु यह स्पष्ट होने लगा था कि इन राष्ट्रीय आन्दोलनों को देर तक नहीं दबाया जा सकेगा। विश्व व्यापक मन्दी व द्वितीय विश्व युद्ध ने साम्राज्य की आर्थिक व सामरिक शक्ति पर कड़े आघात किये। यद्यपि युद्ध की समाप्ति पर ब्रिटेन भी विजयी शिविर में था पर उसकी शक्ति व सत्ता का अवसान आरम्भ हो चुका था। अमरीका के विश्व की बड़ी शक्ति के रूप में उभरने के साथ ही अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में ब्रिटेन का वर्चस्व उत्तरोत्तर कम होता जा रहा था। उपनिवेश बनाए रखने की सामर्थ्य अब ब्रिटेन में नहीं रह गई थी। अत: युद्ध की समाप्ति के पश्चात् उपनिवेशों को स्वतन्त्रता देने का दौर चला। ब्रिटेन ने अपने साम्राज्य को समेटना किसी सद्भावना से प्रेरित होकर नहीं अपितु परिस्थितिजन्य मजबूरियों के कारण शुरू किया। 1947 में दक्षिण एशिया से ब्रितानी शासन समाप्त होने के साथ ही राष्ट्रकुल के इतिहास ने एक नया मोड़ लिया। इसे इतिहास का एक व्यंग्य ही कहा जा सकता है कि आयरलैण्ड ने गणतन्त्र बनने के बाद उसी वर्ष राष्ट्रमंडल से नाता तोड़ा जिस वर्ष गणतन्त्रीय भारत ने उसकी सदस्यता ग्रहण की।(7) इस विरोधाभास के पीछे एक लंबा इतिहास है और उस में जाने की आवश्यकता नहीं है परन्तु इतना कहा जा सकता

---

(7) निकोलस मैन्सर्ग, द कामनवेल्थ एक्सपीरियंस, लंदन 1969, पृ0 327

है कि इसका कारण भारत एवं आयरलैण्ड में सरकारों द्वारा लक्षित अपने-अपने राष्ट्रीय हित थे।(8)

भारत की संविधान सभा ने घोषणा की कि भारत एक सर्वभौम स्वतंत्र गणतन्त्र होगा। इस घोषणा से एक स्वाभाविक प्रश्न पैदा हुआ कि भारत राष्ट्रमंडल का सदस्य रहेगा कि नहीं। सामान्यतया भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास को देखते हुए यह लगता था कि भारत ब्रितानी साम्राज्य से कोई संबंध नहीं रखेगा। परन्तु राजनीति राष्ट्रों को इतनी स्वतंत्रता कहाँ देती है ? परिस्थितियों का वेग नेताओं की मानसिकता को प्रभावित करता है। अगस्त 1942 के बंबई अधिवेशन में कांग्रेस द्वारा पारित प्रस्ताव में स्पष्ट कहा गया था कि "देश ने साम्राज्यवादी और एकतन्त्रवादी सरकार के विरुद्ध अपनी इच्छा जाहिर कर दी है।"(9) तो कैसे वही कांग्रेसी सरकार साम्राज्यवादी ब्रिटेन के नेतृत्व वाले राष्ट्रमंडल की सदस्यता ग्रहण करने की इच्छुक हो गई। इसके पीछे अनेक कारण रहे हैं। राष्ट्रमंडल की सदस्यता ग्रहण करने के पीछे भारतीय नेतृत्व की समीक्षा करते हुए कालिन क्रास तीन सन्दर्भों का हवाला देते हैं। ये हैं राजनीतिक आर्थिक व वैचारिक-मनोवैज्ञानिक।(10)

---

(8) निकोलस मैन्सर्ग, द <u>कामनवेल्थ एक्सपीरियंस</u>, लंदन, 1969 पृ0 327

(9) विपिन चन्द्र, अमलेश त्रिपाठी व वरुण दे, <u>स्वतंत्रता संग्राम</u>, दिल्ली 1972 पृ0 215

(10) कालिन क्रास, द <u>फाल आफ ब्रिटिश एम्पायर</u> 1981-1968, लंदन 1968, पृ0 251

भारतीय नेतृत्व विशेषकर जवाहरलाल नेहरु का मानना था कि राष्ट्रमंडल के भीतर रहकर भारत अनौपनिवेशीकरण की प्रक्रिया को और तेज कर सकता है, दूसरे यह भारत के आर्थिक हित में था कि वह राष्ट्रमंडल में रहे क्योंकि एक तो ब्रिटेन के साथ वह आर्थिक रूप से जुड़ा हुआ था दूसरे विकास के लिये उसे राष्ट्रमंडल से सहायता की आशा थी। भारतीय नेतृत्व की मानसिकता ब्रिटिश विरोधी नहीं थी बल्कि कहा जाय तो वह ब्रितानी पक्षधर ही थी। नेहरु के विषय में तो कहा गया है कि ' ब्रितानी सत्ता के साथ लंबी लड़ाई के बावजूद भी वे ' ब्रितानी सोच" और ब्रितानी संस्कृति के समर्थक थे।[11] निकोलस मैन्सर्ग, भारत की राष्ट्रमंडल सदस्यता को भारत पाकिस्तान संबंधों के सन्दर्भ में देखते हैं।[12] इस सन्दर्भ में श्री तेजबहादुर सप्रू का राजगोपालाचारी को लिखा गया पत्र दिलचस्प है। उन्होंने 1948 में लिखा था कि

"यदि हम ब्रिटेन से पूरी तरह संबंध विच्छेद कर लेते हैं तथा पाकिस्तान एक स्वायत्त राज्य की तरह रहता है तो भविष्य में भारत पाकिस्तान संबंधों में विवाद की दशा में ब्रिटेन यदि खुले तौर पर उसकी सैनिक सहायता करे तो हम उसे दोष नहीं दे सकते। - - - - अतः मैं आपको स्पष्ट रूप से लिख रहा हूं कि चाहे किसी भी प्रकार की व्यवस्था हम ग्रहण करें, हमें ब्रितानी राष्ट्रमंडल से निकलना नहीं चाहिए। कम से कम कुछ समय के लिए तो बिल्कुल भी नहीं।"[13]

---

(11) वही, पृ0 251

(12) निकोलस मैन्सर्ग, द कामनवेल्थ एक्सपीरियंस, लंदन 1969 पृ0 329

(13) वही पृ0 330

नेहरू भी इस विचार से सहमत थे। इन्हीं कारणों से प्रभावित हो 1948 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपने जयपुर अधिवेशन में राष्ट्रमंडल में रहने की इच्छा प्रकट की।

उधर वेस्टमिनिस्टर संविधि की प्रस्तावना में सन्निहित बेलफोर फार्मूले को परिवर्तित करने के ब्रिटेन के अपने कारण थे। पहला कारण तो मनोवैज्ञानिक था। वह यह कि ब्रिटेन साम्राज्य के ढलते हुए सूर्य की लालिमा कम से कम राष्ट्रमंडल के रूप में तो बनाए रखना चाहता था। "वह पूर्व साम्राज्य की किसी अवस्था को जीवित रखना चाहता था।"(14) दूसरे ब्रिटेन को भय था कि राष्ट्रमंडल से बाहर रहने पर एशिया में साम्यवाद का खतरा(15) बढ़ जाएगा एवं दक्षिण पूर्व एशिया में "पश्चिम विरोधी"(16) तत्व मजबूत हो उठेंगे।

स्वतंत्र भारत ने अपने लिए गणतन्त्रात्मक व्यवस्था को चुना अतः उसकी सदस्यता से राष्ट्रमंडल में परिवर्तन अवश्यम्भावी था। बेलफोर फार्मूले में उल्लिखित "राजा के प्रति निष्ठा" पद अब असंगत हो गया। अप्रैल 1949 में राष्ट्रमंडल के प्रधानमंत्रियों (भारत, पाकिस्तान व सीलोन (अब श्रीलंका) सहित) का सम्मेलन राष्ट्रमंडल की पुनर्व्याख्या करने के लिए आयोजित हुआ। इस सम्मेलन के बाद दिए गए संयुक्त वक्तव्य में कहा गया कि "यूनाइटेड किंगडम, कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, दक्षिण अफ्रीका,

---

(14) कालिन क्रास, द फाल आफ द ब्रिटिश एम्पायर 1918-1968, लंदन 1969, पृ० 252

(15) वहीं पृ० 252

(16) निकोलस मेन्सर्ग, द कामनवेल्थ एक्सपीरिएंस, लंदन 1969 पृ० 334

भारत, पाकिस्तान तथा सीलोन की सरकारों ने, जो कि ब्रितानी राष्ट्रमंडल के रूप में एकत्रित हैं एवं ताज के प्रति समान निष्ठा रखती हैं, जो कि उनके स्वतन्त्र सहकार का प्रतीक है; भारत में होने वाले सम्भावित सवैधानिक परिवर्तनों पर विचार किया है।

भारत सरकार ने, भारतीय जनता के इस आग्रह को, कि लागू होने जा रहे नये संविधान के अनुसार भारत एक गणतन्त्र बन जाएगा, राष्ट्रमंडल की अन्य सरकारों को सूचित कर दिया है। इसके बावजूद भारत सरकार ने घोषणा की है, एवं अपनी इस इच्छा पर जोर दिया है कि वह राष्ट्रमंडल की अपनी पूर्ण सदस्यता को जारी रखना चाहती है एवं वह राजा को, स्वतंत्रत राष्ट्रों के स्वैच्छा से अपनाए गए संगठन के रूप में राष्ट्रमंडल का अध्यक्ष स्वीकार करती है।

राष्ट्रमंडल के अन्य देशों की सरकारें, जिनकी राष्ट्रमंडल की सदस्यता का आधार परिवर्तित नहीं हुआ है, इस घोषणा में उल्लिखित शर्तों पर भारत की सदस्यता को स्वीकार करती है एवं मान्यता देती हैं।

तदानुसार, यूनाइटेड किंगडम, कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, दक्षिण अफ्रीका, भारत, पाकिस्तान तथा सीलोन घोषणा करते हैं कि वे स्वतन्त्र एवं समान सदस्यों की हैसियत से स्वैच्छा से शान्ति, स्वतंत्रता एवं प्रगति की दिशा में सहकार करते हुए राष्ट्रमंडल में संगठित हैं।'(17)

---

(17) राष्ट्रमंडल प्रधानमंत्रियों के लंदन में हुए सम्मेलन के बाद 27 अप्रैल, 1949 को जारी शासकीय विज्ञप्ति।

इस तरह से घोषणा के आरम्भ में "ब्रितानी राष्ट्रमंडल" के नाम से पुकारा गया। इन राष्ट्रों का यह सहकार अन्त में "स्वतंत्र एवं समान राष्ट्रों" का मंडल हो गया। राजा राष्ट्रमंडल के देशों का प्रमुख न होकर राष्ट्रमंडल का अध्यक्ष हो गया। इस घोषणा ने जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, राष्ट्रमंडल के इतिहास को एक नया मोड़ दिया। उसकी संघटना के साथ-साथ उसके चरित्र, सोच तथा मानसिकता में व्यापक परिवर्तन होने आरम्भ हो गए। राष्ट्रमंडल श्वेत राष्ट्रों की एक चौपाल न रहकर बहुवर्णीय तथा सच्चे मायनों में अन्तरराष्ट्रीय हो गया। संभवत: उसी को ध्यान में रखते हुए ब्रितानी राष्ट्रमंडल मंत्री पैट्रिक गोर्डन वाकर ने 1950 में कहा था कि राष्ट्रमंडल आज "उतना ही एशियाई राष्ट्रमंडल है जितना कि पश्चिमी"[18] भारत के प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने इसे एक "नए साहचर्य का प्रतीक"[19] कहा। राष्ट्रमंडल में जो परम्परा भारत ने शुरू की उसका अनुकरण साम्राज्य के अन्य पूर्व उपनिवेशों ने भी किया। भारत, पाकिस्तान व सीलोन सहित राष्ट्रमंडल की सदस्य संख्या अब आठ हो गई। परन्तु अभी तक इसमें श्वेत देशों का बहुमत था।

तीन फरवरी 1960 को केपटाउन, दक्षिण अफ्रीका में संसद के दोनों सदनों को संबोधित करते हुए ब्रितानी प्रधानमंत्री ने जब कहा था कि "परिवर्तन की हवा इस(अफ्रीका) महाद्वीप से होकर बह रही है।"[20]

---

(18) जे० पी० वाटसन, एम्पायर टू कामनवैल्थ, लंदन 1971 पृ० 151

(19) जवाहर लाल नेहरू स्वाधीनता और उसके बाद, इलाहाबाद, 1954, पृ० 295

(20) निकोलस मैन्सर्ग, द कामनवैल्थ एक्सपिरियंस, लंदन, 1969 पृ० 318

तो उनका आशय अफ्रीकी महाद्वीप में राजनीतिक जागरण व परिवर्तन की उस हवा से था जो 1957 में घाना की स्वतंत्रता से आरम्भ हुई थी। 1957-67 का दशक अफ्रीका में परिवर्तन का दशक था। राष्ट्रमंडल की संघटना पर भी इसने व्यापक प्रभाव डाला। यद्यपि 1956 में स्वेज विवाद के संदर्भ में ब्रितानी कदमों की एशियाई-अफ्रीकी देशों के साथ-साथ राष्ट्रमंडल के अन्य देशों ने भी भर्त्सना की थी तथापि इसने नवोदित अफ्रीकी राष्ट्रों को राष्ट्रमंडल की सदस्यता ग्रहण करने के प्रति निरुत्साहित नहीं किया। अपनी स्वतंत्रता के पश्चात् घाना ने नक्रूमा के नेतृत्व में 1957 में राष्ट्रमंडल की सदस्यता ग्रहण की। घाना राष्ट्रमंडल का प्रथम गैर श्वेत अफ्रीकी राष्ट्र था। उसके बाद अन्य अफ्रीकी राष्ट्र - नाइजीरिया(1960), सियरा लियोन व तंगानिका(1961), उगांडा(1962) केन्या व जंजीबार(1963), न्यासालैण्ड(अब मलावी) व उत्तरी रोडेशिया (अब जाम्बिया) (1964), गाम्बिया(1965), बोत्सवाना(1966) तथा स्वाजीलैण्ड(1968) -- भी राष्ट्रमंडल में सम्मिलित हो गए। न केवल ये देश बल्कि कई भूमध्य सागरीय राष्ट्र यथा साइप्रस व माल्टा और कैरिबियन देश -- जमैका, त्रिनिदाद व टोबैगो व बारबाडोस -- भी इसी दौरान राष्ट्रमंडल में शामिल हुए। इसके साथ ही राष्ट्रमंडल का पूर्ण रूपान्तरण हो गया। राष्ट्रमंडल के इस बहुजातीयकरण से इसके चरित्र में बदलाव आना स्वाभाविक था। गैर श्वेत राष्ट्रों के बहुमत, विशेषकर अफ्रीकी सदस्यों के उत्साहित प्रयत्नों के फलस्वरूप ही राष्ट्रमंडल ने बाद में एक औपचारिक ढांचा ग्रहण किया।

ब्रिटेन द्वारा राष्ट्रमंडल की ओर कम ध्यान दिये जाने से राष्ट्रमंडल के लिए एक स्थायी मशीनरी की स्थापना अवश्यम्भावी हो गयी। पहले ब्रिटेन के विदेश मंत्रालय में राष्ट्रमंडल कार्यालय राष्ट्रमंडलीय गतिविधियों का संचालन था। परन्तु ब्रिटेन ने इसे बटोरना आरम्भ कर दिया था। अतः राष्ट्रमंडल सचिवालय की स्थापना हुई।

राष्ट्रकुल अभी तक एक ढीले ढाले क्लब के रूप में ही कार्य कर रहा था। सूचनाओं के आदान-प्रदान एवं विचार विमर्श की कोई निश्चित उपक्रम नहीं था। समय-समय पर होने वाले शिखर सम्मेलनों के माध्यम से ही राष्ट्रमंडल की राय प्रकट होती थी। राष्ट्रमंडल के नए सदस्य, खासतौर से अफ्रीकी देश इसे एक औपचारिक रूप देने के प्रति विशेष उत्साहित थे। वस्तुतः नए सदस्यों का यह उत्साह आकस्मिक नहीं था अपितु तृतीय विश्व की उस सामूहिक सोच का ही प्रतिफलन था जिसके तहत वह आने वाले काल में अपने आर्थिक अधिकारों की मांग करने के लिए तैयार हो रहा था। राजनीतिक स्वातन्त्र्य के लिए संघर्ष एवं उसकी प्राप्ति अफ्रीकी एशियाई देशों का अन्तिम लक्ष्य नहीं था। क्योंकि राजनीतिक दासत्व की समाप्ति मात्र से ही समाज में गुणात्मक परिवर्तन नहीं आ जाता। केवल सत्ता परिवर्तन जन सामान्य के लिए अधिकारों की प्राप्ति की गारन्टी नहीं होता। जब तक आम जनता के जीवन स्तर में परिवर्तन नहीं आता तब तक राजनीतिक परिवर्तन केवल सतही प्रभाव उत्पन्न करते हैं ऐसे में यदि आम जन 'कोउ नृप होय' की मानसिकता ग्रहण करता है तो उसका दोष नहीं। संक्षेप में स्वाधीनता की प्राप्ति तृतीय विश्व के देशों के लिए अपने आर्थिक सांस्कृतिक अधिकारों की लड़ाई की पूर्व पीठिका थी। फलतः 1955 के बांडुंग सम्मेलन व 1961 में गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों के प्रथम सम्मेलन से

ही इन देशों में अपने आर्थिक अधिकारों के प्रति जागरुकता के चिन्ह दिखाई देने लगे थे । इस सदी के छठे व सातवें दशक को तृतीय विश्व की दृष्टि से जागरण का काल कहा जाता है क्योंकि इसी समय से 1944 में ब्रेटन वुड में जन्मी वर्तमान शोषक विश्व अर्थ व्यवस्था के विरुद्ध जनमत बनाने एवं संगठित होने के प्रयास आरम्भ हुए थे । गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की स्थापना एक प्रकार से संयुक्त राष्ट्र संघ व उससे बाहर एक साँझे मंच की प्राप्ति के उद्देश्य से की गई थी । एक ओर स्वतंत्रता प्राप्ति दूसरी ओर नवउपनिवेशवाद अर्थात् आर्थिक सांस्कृतिक व सामाजिक शोषण साथ-साथ चल रहे थे । इसका एक ही उपाय था । और वह था अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था में आमूल परिवर्तन । यद्यपि नई अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की स्थापना की मांग आठवें दशक (1973 का गुटनिरपेक्ष देशों का शिखर सम्मेलन) में ही स्पष्ट रूप से उठाई गई तथापि अपने बीज रूप में यह मांग बहुत पहले ही उठनी शुरू हो गई थी । 1964 में व्यापार व विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन(अंकटाड) की स्थापना इस दृष्टि से उल्लेखनीय है । सारतः नवोदित राष्ट्रों में अपने आर्थिक-सामाजिक-सांस्कृतिक अधिकारों के प्रति जागरुकता व संघर्ष करने की इच्छा सातवें दशक के पूर्व से ही दिखाई दे रही थी । इस अन्तरराष्ट्रीय वातावरण से राष्ट्रमंडल भी अप्रभावित कैसे रह सकता था, जबकि तृतीय विश्व के राष्ट्र इसमें बहुमत में थे । राष्ट्रमंडल के अफ्रीकी सदस्यों की इसे एक औपचारिक रूप देने की इच्छा वस्तुतः इस अन्तरराष्ट्रीय परिपेक्ष्य में ही समाकलित की जा सकती है । वे राजनीतिक एवं आर्थिक दोनों ही क्षेत्रों में इसे एक सक्रिय मंच बनाना चाहते थे । राष्ट्रमंडल का तत्कालीन ढीला-ढाला ढांचा उनके इस उद्देश्य की प्राप्ति में सार्थक भूमिका नहीं निभा सकता था । तृतीय विश्व के दूरगामी आर्थिक हितों के सन्दर्भ में राष्ट्रमंडल तभी एक सार्थक व प्रभावी भूमिका निभा सकता था जबकि उसमें एक संगठनात्मक स्थायित्व आ जाए । अब तक चलने वाली

सम्मेलनीय राजनीति परिवर्तित अन्तरराष्ट्रीय वातावरण में व राष्ट्रमंडल के नवोदित देशों के भिन्न हितों व परिपेक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उपयुक्त नहीं थी ।

1964 का राष्ट्रमंडल शासनाध्यक्ष सम्मेलन बदलते अन्तरराष्ट्रीय परिपेक्ष्यों में लंदन में आयोजित हुआ । यद्यपि राष्ट्रमंडल के लिए एक स्थायी मशीनरी की स्थापना का मांग किसी पूर्व विचारित विश्लेषण से अभिप्रेरित नहीं थी तथापि सम्मेलन के दौरान विभिन्न शासनाध्यक्षों के भाषणों में इसकी आवश्यकता स्पष्ट रूप से ध्वनित होती थी । उदाहरण के लिए पाकिस्तान के जनरल अयूब ने कहा कि राष्ट्रमंडल को सूचनाओं के आदान-प्रदान के लिए एक "सैन्ट्रल क्लीअरिंग हाउस" बनाना चाहिए,जो कि सदस्य राष्ट्रों के आर्थिक विकास में एक सार्थक भूमिका अदा कर सके ।[21] घाना के नकरुमा ने परिवर्तित विश्व परिस्थितियों में राष्ट्रकुल के लिए एक प्रभावी भूमिका की वकालत करते हुए उसके लिए एक स्थानीय मशीनरी की आवश्यकता बताई । उसके अनुसार विकसित एवं विकासशील सदस्यों के मध्य आर्थिक सहयोग, विशेषकर व्यापार व आर्थिक अनुदान के क्षेत्र में राष्ट्रमंडल को यदि एक निश्चित भूमिका अदा करनी है तो एक स्थायी मशीनरी आवश्यक है । अन्यथा जिस तरह की राजनैतिक - आर्थिक - सामाजिक भिन्नताएं राष्ट्रमंडल में हैं उनके साथ यह जिन्दा नहीं रह सकेगा ।[22]
इसी तरह से विचार नाइजीरिया के अबुवाकर तफावा, उगांडा के मिल्टन ओबोटे, त्रिनिदाद के

टिप्पणि

(21) आर्नोल्ड/स्मिथ स्टिचिज इनटाइम, द कामनवेल्थ इन वर्ल्ड पालिटिक्स लंदन,1981, पृ0 5

(22) वही पृ0 4-5

सर एरिक विलियम्स आदि ने व्यक्त किए। संभवत: उगांडा के मिल्टन ओबोटे ने सर्वप्रथम "राष्ट्रमंडल सचिवालय" नाम का प्रयोग किया। राष्ट्रमंडल के पुराने सदस्यों- ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड एवं कनाडा को इस तरह के प्रस्ताव की अपेक्षा नहीं थी एवं मूलत: वे इस बात के विरोधी थे कि राष्ट्रमंडल को किसी भी औपचारिक संस्था का रूप दिया जाए। परन्तु अन्ततोगत्वा ये देश भी राष्ट्रमंडल सचिवालय की स्थापना के लिए सहमत हो गए। यह नम्यनीयता राष्ट्रमंडल का अपना वैशिष्ट्य है। इस तरह से इस सम्मेलन में राष्ट्रमंडल सचिवालय की स्थापना का निर्णय लिया गया जोकि बाद में राष्ट्रमंडल की गतिविधियों विशेषकर आर्थिक कार्यक्रमों के क्रियान्वन का प्रमुख अभिकरण बन गया। एक अन्य दृष्टि से भी यह सम्मेलन अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा। सदस्य राष्ट्रों के मध्य आर्थिक सहयोग को बढ़ाने के लिए प्रभावी कदमों पर पहली बार इसी सम्मेलन में सहमति हुई। बदलती हुई अन्तराष्ट्रीय परिस्थितियों में राष्ट्रमंडल अपने लिए एक नई भूमिका की तलाश में था इस तथ्य की पुष्टि उस प्रस्ताव से हो जाती है जो ब्रितानी प्रधानमंत्री श्री एलेस होम ने इस सम्मेलन में रखा था। राष्ट्रमंडल को एक व्यापक आधार देने के लिए तथा तृतीय विश्व के आर्थिक विकास में सहयोग देने के लिए श्री होम ने निम्नलिखित चार क्षेत्रों में पारस्परिक सहयोग में वृद्धि हेतु अपने सुझाव दिए :-

(क) कृषि प्रकल्पों के लिए तकनीकी सहायता ;

(ख) उच्च शिक्षा के क्षेत्र में सहयोग व सहायता ;

(ग) लोक प्रशासन के क्षेत्र में प्रशिक्षण तथा

(घ) तकनीकी सहयोग के लिए क्षेत्रीय संगठनों की स्थापना।

इन क्षेत्रों में राष्ट्रमंडल के विकसित सदस्य राष्ट्रों द्वारा उसके विकासशील राष्ट्रों की मदद के लिए राष्ट्रमंडल फाउंडेशन की संस्थापना का जिक्र भी इस प्रस्ताव में था। जो कि एक वर्ष बाद अर्थात् 1965 में साकार भी हो गया। तकनीकी सहयोग के लिए राष्ट्रमंडल कोष जोकि 1971 से आरम्भ हुआ, की स्थापना के प्रयास भी पूर्ण रूप में इसी सम्मेलन से आरम्भ हो गए थे। विकसित सदस्यों का यह प्रस्ताव राष्ट्रमंडल के चारित्रिक बदलाव का सूचक था। आर्थिक मुद्दों पर जोर देने के कारण ही राष्ट्रमंडल में तृतीय विश्व के देशों की रुचि बढ़ी। यदि ऐसा नहीं होता तो राष्ट्रमंडल जिन्दा ही नहीं रह सकता था। उसके बाद से ही राष्ट्रमंडल ने अपनी इस नई भूमिका, जिसमें विकास एवं आर्थिक सहकार व सहयोग के मुद्दे राजनीतिक मुद्दों से संभवतः प्रमुख हो गए, की ओर अधिक ध्यान देना आरम्भ कर दिया। आर्थिक विकास के प्रश्नों पर राष्ट्रमंडल की चिन्ता उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई। यह बात राष्ट्रमंडल के दोनों महासचिवों श्री आर्नोल्ड स्मिथ व श्रीदत्त रामफल के कार्यकाल के दौरान राष्ट्रमंडल द्वारा कराए गए अध्ययनों और सर्वेक्षणों की रपटों को देखने से भली भाँति स्पष्ट हो जाती है। इनका विश्लेषण आगे अध्यायों में किया जाएगा।

स्पष्ट है कि राष्ट्रमंडल में तृतीय विश्व के विकासशील देशों का बहुमत हो जाने से उसके संघटन, चरित्र, गतिविधियों एवं क्रियाकलापों में व्यापक एवं दूरगामी परिवर्तन छठे दशक के पूर्वार्द्ध में ही होने आरम्भ हो गए थे। वह एक सर्वथा नई भूमिका के लिए तैयार हो रहा था। सातवें दशक के अन्त तक परिवर्तन का यह क्रम लगभग पूरा हो चुका था। अफ्रीका, एशिया एवं लातिन अमरीका के निर्धन देश अब तक उपनिवेशवाद का जुआ सामान्यतया अपने कन्धों से उतार कर फेंक चुके थे पर यह उनके शोषण का

अन्त नहीं था । राजनीतिक दासत्व की समाप्ति का अनुसरण आर्थिक स्वालम्बन ने नहीं किया । राजनीतिक स्वातन्त्र्य आर्थिक व्यवस्था में फलीभूत न होकर विपन्नता लाया क्योंकि विश्व अर्थव्यवस्था अभी भी शोषणयुक्त थी । नव उपनिवेशवाद कई अर्थों में उपनिवेशवाद से कहीं अधिक घातक, तीव्र व तीक्ष्ण था । जहाँ कुछ देशों में विश्व के अन्य देशों के विकास की कीमत पर समृद्धि के नए-नए सोपान तय किए जा रहे थे वहीं विश्व का अधिकांश भाग गरीबी, भुखमरी व विपन्नता के नए-नए चरणों से गुजर रहा था । इसी पृष्ठभूमि में विकासशील राष्ट्रों ने विभिन्न अन्तरराष्ट्रीय मंचों से नई अन्तरराष्ट्रीयअर्थव्यवस्था के लिए आवाज उठानी आरम्भ की । 1970 में लुसाका में गुटनिरपेक्ष देशों के राजाध्यक्ष सम्मेलन एवं 1973 के अल्जीयर्स गुटनिरपेक्ष राज्याध्यक्ष सम्मेलन में तृतीय विश्व की यह माँग स्पष्ट व दृढ़ रूप से मुखरित हुई फलत: संयुक्त राष्ट्र महासभा ने अपने छठे और सातवें विशेष अधिवेशनों में आर्थिक अधिकारों एवं कर्तव्यों के मांग-पत्र को स्वीकृति दी जोकि आज तृतीय विश्व के आर्थिक संघर्ष का मूल दस्तावेज है । राष्ट्रमंडल ने अपनी तरह से इस समस्या से जूझने का प्रयास किया । पारस्परिक सहायता के प्रकल्पों के माध्यम से विकास की गति में सहयोग राष्ट्रमंडल छोटे पर दृढ़ रूप में कर रहा है । इन प्रयासों की सफलता या असफलता पर उंगली उठाई जा सकती है परन्तु इनकी सार्थकता पर नहीं । ये प्रकल्प जोकि एशिया अफ्रीका-कैरिबियन तथा भूमध्य सागरीय देशों में चले रहे हैं, साधनों की दृष्टि से 'छोटे' हो सकते हैं उद्देश्यों की दृष्टि से नहीं । एक तरह से राष्ट्रमंडल के तृतीय विश्वकरण की यह स्वाभाविक परिणति है । यह राष्ट्रमंडल के चारित्रिक बदलाव का फल है क्योंकि अब यह ब्रितानी संसद के हाउस आफ लार्ड्स के समान शाही भव्यता की इमारत स्वरूप पूर्व उपनिवेशों का एक क्लब

मात्र नहीं है अपितु दक्षिण व उत्तर के मध्य एक साँझा मंच सा है। राष्ट्रमंडल महासचिव श्री श्रीदत्त रामफल के अनुसार अब यह साम्राज्य की भव्यता का प्रतीक नहीं अपितु उसका 'नेगेशन' है।(23)

---

(23) श्रीदत्त रामफल, <u>वन वर्ल्ड टू शेयर</u>, दिल्ली, 1980 पृ0 208

द्वितीय अध्याय

राष्ट्रमंडल और नयी अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था

- नयी अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था के विचार
- राष्ट्रमंडल और नयी अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था

DISS
V,1-N48'N8
152M6

TH-1925

I

नयी अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की मांग अन्तरराष्ट्रीय राजनीति में वर्तमान सदी के मध्य से आए उस गुणात्मक परिवर्तन की द्योतक है जिसमें विश्व के गरीब और पिछड़े नवोदित राष्ट्रों ने अपनी राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक अस्मिता की रक्षा के लिए एकजुट हो संघर्ष करने का इरादा बनाया है। उपनिवेशवाद का जुआ अपने कन्धों से उतार फेंक ये देश इस दौरान अपने लिए एक नयी पहचान की खोज में अग्रसर हुए हैं। विकासशील राष्ट्रों द्वारा अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन की मांग इस खोज का एक अहम मुद्दा है। नयीअन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की मांग का विचार इस दौरान अनेक सोपानों से गुजरा है। राष्ट्रमंडल अपने एक अलग तरीके से विकासशील देशों की आवाज को बुलन्द करने में लगा है। उसका भी इस क्षेत्र में एक विशिष्ट योगदान है। आइये देखें कि आरम्भ में नयी अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की मांग कैसे उठी ? तृतीय विश्व ने किस प्रकार और किस रूप में अपने आप को इसके लिए संगठित किया ? और राष्ट्रमंडल के अतिरिक्त वे कौन-कौन से प्रमुख अन्तरराष्ट्रीय मंच थे जिन्होंने इस मांग के प्रस्फुटन, विकास और दृढ़ीकरण की प्रक्रिया में प्रमुख भूमिका निभायी ? व राष्ट्रमंडल इस दिशा में किस प्रकार अपना योगदान दे रहा है ?

द्वितीय विश्व युद्धोत्तर काल को विश्व जन जागरण का काल कहा जा सकता है। इस दौरान दुनिया के एक बड़े भाग में राजनीतिक और आर्थिक दोनों स्तरों पर व्यापक परिवर्तन हुए। साम्राज्यों का अन्त होकर किस तरह एशिया और अफ्रीका में नवोदय हुआ यह कहानी अनेक बार

JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY LIBRARY

दोहरायी जा चुकी है । जवाहर लाल नेहरू ने ठीक ही इस काल को अफ्रीका एशिया के नव चेतना काल की संज्ञा दी थी ।(1) इस दौरान विश्व राजनीति में स्वरूपगत परिवर्तन हुए । विश्व राजनीति वास्तविक अर्थ में वैश्विक हो गयी । क्योंकि इससे पूर्व "अन्तरराष्ट्रीयता" यूरोप के कुछ देशों की नीतियों और घटनाक्रम तक ही सीमित थी । एशिया, अफ्रीका और लातिन अमेरिका में नये राष्ट्रों के उदय के कारण कम से कम संख्यात्मक दृष्टि से विकासशील देशों की ताकत में खासी वृद्धि हुई । इससे पहले अफ्रीकी एशियाई देशों की स्थिति विश्व राजनीति की शतरंज में चन्द मोहरों से बेहतर नहीं थी । राजनीतिक रूप से उनका कोई स्वतन्त्र-सार्वभौम अस्तित्व नहीं था । लेकिन "1950 और 1960 के दशक में साम्राज्यवादी व्यवस्था के पतन के बाद भौगोलिक और सांस्कृतिक दोनों ही स्तरों पर राज्य व्यवस्था का व्यापक विस्तार हुआ । विश्व के सभी भागों में आज स्वतंत्र राज्य हैं जो अन्तरराष्ट्रीय प्रश्नों पर सक्रिय भूमिका निभाते हैं ।(2)

नये राष्ट्रों के उदय से अन्तरराष्ट्रीय राजनीति में परिवर्तन अवश्यम्भावी थे । तृतीय विश्व के देशों का बहुमत होने से संयुक्त राष्ट्र संघ महासभा के स्वरूप में आया परिवर्तन इसका एक अनन्य उदाहरण है । राजनीतिक स्वातन्त्र्य की प्राप्ति के बाद इन देशों के सामने दो स्पष्ट लक्ष्य थे । एक तो अपने स्वतंत्र सार्वभौम अस्तित्व को बनाये रखना । क्योंकि इन देशों को स्वाधीनता एक लंबे समय के संघर्ष के बाद प्राप्त हुई थी अत: अपने इस नये रूप के प्रति एक सावधानी और सजगता का दृष्टिकोण

---

(1) जवाहर लाल नेहरू, स्वाधीनता और उसके बाद, इलाहाबाद, 1954 पृ0 329

(2) रिचर्ड फाक वगैरह(संपा0)' टुवर्ड ए जस्ट वर्ल्ड आर्डर' पहला भाग कोलोराडो 1982 पृ0 1

स्वाभाविक ही था । इन देशों के सामनेदूसरा लक्ष्य, जो वास्तव में पहले लक्ष्य की ही निष्पत्ति है, था अपनी वर्तमान स्थिति को और सुदृढ़ करना । स्पष्ट है कि दृढ़ीकरण की यह प्रक्रिया इन देशों के आर्थिक हालात में सुधारों के बिना पूरी नहीं हो सकती थी ।[3] इसी कारण राजनीतिक स्वातन्त्र्य की प्राप्ति के बाद इन देशों ने अपने आर्थिक अधिकारों के लिए आवाज उठानी शुरु की । इस संदर्भ में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण रही है । नयी अन्तरराष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का सवाल गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के साथ निकटता से जुड़ा हुआ है । गुटनिरपेक्ष आन्दोलन जोकि अपने आरंभिक दौर में शीतयुद्ध की छाया में पूर्व-पश्चिम वैचारिक संघर्ष के तले जन्मा था, उत्तरोत्तर स्वयं को विकासशील देशों के आर्थिक अधिकारों के प्रश्नों से जोड़ता चला गया । "1950 और 1960 के दशक में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन पूर्व पश्चिम मतभेदों, और शीत युद्ध के कारण उत्पन्न गुटबन्दी के कारण पैदा हुआ ----- 1960 के दशक के मध्य तक एशिया अफ्रीका के अधिकांश देश स्वतन्त्र हो चुके थे ------ इसी समय तनाव शैथिल्य अथवा "दैदान्त" की नीति के कारण पूर्व पश्चिम तनावों में भी थोड़ी राहत आयी थी । तदुपरान्त गुटनिरपेक्ष आन्दोलन का झुकाव उत्तर दक्षिण प्रश्नों की ओर होता चला गया । अत: पूर्व-पश्चिम तनावों के प्रश्न को पीछे छोड़ कर नयी अन्तरराष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की मांग इसका प्रमुख लक्ष्य हो गयी ।[4]

---

(3) ए० के० दास गुप्त, "नान एलाटमैन्ट एंड द इंटरनेशनल इकनामिक आर्डर"
के० पी० मिश्र, (संपा०) नान एलाटमैन्ट फ्रन्टियर्स एंड डायनामिक्स, नयी दिल्ली, 1982, पृ० 134

(4) सुरेश चन्द्र गंगल, "नान एलाइन्मेंट एंड थर्ड वर्ल्ड"
के० पी० मिश्रा (संपा०) नान एलाइन्मेंट डायनामिक्स एंड फ्रंटियर्स नयी दिल्ली, 1982 पृ० 194-195

गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की औपचारिक शुरुआत सितम्बर, 1961 में बेलग्रेड में हुए शिखर सम्मेलन से हुई। हालांकि इससे पहले भी 1955 में बांडुंग में अफ्रीका-एशियाई देश अपनी एकजुटता का परिचय दे चुके थे। यद्यपि अब तक आर्थिक प्रश्नों की ओर इन देशों का ध्यान पूरे तौर पर नहीं गया था तथापि बेलग्रेड शिखर सम्मेलन के बाद जारी घोषणा-पत्र में अपने आर्थिक अधिकारों के प्रति जागृति की स्पष्ट ध्वनि दिखाई देती है।(5)

उसके पश्चात् गुटनिरपेक्ष आन्दोलन आर्थिक मुद्दों की ओर उत्तरोत्तर अधिक ध्यान देता चला गया। जिसका प्रतिफलन एक मई, 1974 को संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा पारित प्रस्ताव में हुआ जिसमें नयी अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था (न्यू इंटरनेशनल इकनामिक आर्डर) की स्थापना की मांग की गयी थी। नयी अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की स्थापना और गुट निरपेक्ष आन्दोलन में एक घनिष्ठ संबंध है। वस्तुतः "नयी अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की स्थापना के लिए किया जा रहा संघर्ष गुटनिरपेक्ष आन्दोलन द्वारा उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद तथा सभी तरह के नव उपनिवेशवाद की समाप्ति के लिए किये जा रहे व्यापक संघर्ष का एक अंग है।(6)

नयी अंतरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की स्थापना के लिए गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के संघर्ष को तीन अवस्थाओं या कालों में बांटा जा सकता है :-

---

(5) के० बी० लाल और एस० डी० मुनि, "नान इलाइन्मेंट एंड द न्यू इंटरनेशनल इकानामिक आर्डर", के० पी० मिश्र व के० आर० नारायण (संपा०) नान एलाइन्मेंट इन कन्टैम्परेरी इंटरनेशनल रिलेशन्स, नयी दिल्ली, 1981, पृ० 136

(6) वही पृ० 138

(क) 1950 का दशक - जागरूकता का काल

(ख) 1960 का दशक - तैयारी और उद्देश्यों के निर्धारण का काल

(ग) 1970 के पश्चात - संघर्ष का काल
का काल

नयी अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था के लिए विकासशील देशों की लड़ाई का पहला चरण अपने आर्थिक अधिकारों के प्रति जागृति का काल था। इसके तहत पहले पहल इन देशों ने प्राकृतिक संसाधनों पर राज्य की सार्वभौमता के अधिकार पर संयुक्त राष्ट्र संघ की स्वीकृति की मोहर लगवायी। 1955 के बांडुंग सम्मेलन में भाग लेने वाले देशों ने "अन्तरराष्ट्रीय कीमतों एवं कच्चे माल की मांग को स्थिर करने", अपने निर्यातों में विविधता लाने और एशिया और अफ्रीका में राष्ट्रीय और क्षेत्रीय बैंक और बीमा कंपनियां स्थापित करने की मांग की थी।[7] उसके बाद जब 1956 में ब्रिओनी में भारत के प्रधानमंत्री श्री नेहरू, मिस्र के नासिर और युगोस्लाविया के मार्शल टीटो का शिखर सम्मेलन हुआ, उसमें भी आर्थिक मुद्दों पर जोर दिया गया। उल्लेखनीय है कि ब्रिओनी शिखर सम्मेलन गुटनिरपेक्ष आन्दोलन को एक निश्चित स्वरूप और दिशा देने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था।

यह मानते हुए भी कि इस दौरान गुटनिरपेक्ष देशों ने आर्थिक मुद्दों की ओर ध्यान दिया, यह नहीं कहा जा सकता कि वे अपने आर्थिक अधिकारों के प्रति पूरी तरह से सजग हो चुके थे। क्योंकि अभी तक उपनिवेशवाद दुनिया से पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ था अतः इन देशों का ध्यान मुख्यतः उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद का विरोध करने में ही लगा रहा। दूसरी ओर नवोदित देशों के नेता अभी तक ब्रेटन वुड

---

(7) वही पृ0 138

व्यवस्था पर आधारित अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक परिस्थितियों को पूरी तरह समझ भी नहीं पाये थे । इसलिए आर्थिक प्रश्नों का राजनीतिक मुद्दों की पृष्ठभूमि में रहना स्वाभाविक ही था ।

सितम्बर 1961 में बेलग्रेड में हुए गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों के प्रथम सम्मेलन के साथ ही नयी अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की स्थापना के लिए तीसरी दुनिया की लड़ाई का दूसरा दौरा शुरु होता है । उल्लेखनीय है कि संयुक्त राष्ट्र महासभा ने दिसम्बर 1960 में उपनिवेशों और उनकी जनता को स्वतंत्रता देने की बाबत एक घोषणा-पत्र पारित किया था । अर्थात् उपनिवेशवाद के विरुद्ध लड़ाई का एक बड़ा हिस्सा अब तक लड़ा जा चुका था ।

राष्ट्रमंडल के संदर्भ में देखा जाये तो 1957 में घाना राष्ट्रकुल का प्रथम अफ्रीकी सदस्य बना और नाईजीरिया के सदस्य बनते-बनते राष्ट्रमंडल में भी तीसरी दुनिया के विकासशील देशों का बहुमत स्थापित हो गया ।

बेलग्रेड शिखर सम्मेलन में "उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद के परिणामस्वरूप पैदा हुई आर्थिकअसमानताओं" को दूर करने के प्रयास शुरु करने का आह्वान किया गया । इसमें यह महसूस किया गया कि " आर्थिक रूप से विकसित राष्ट्रों और कम विकसित राष्ट्रों के बीच लोगों के जीवन स्तरों की असमानता को कम करने के लिए (विकासशील देशों में) आर्थिक, औद्योगिक और कृषि क्षेत्र के विकास की[8] जोरदार आवश्यकता

---

(8) 'गुट निरपेक्ष शिखर सम्मेलन का बेलग्रेड घोषणा-पत्र बेलग्रेड, 1961, अनुच्छेद 21

है । इसमें प्राकृतिक साधनों के उपयोग के लिए राष्ट्रीय स्वतंत्रता और सार्वभौमता के सिद्धान्त को भी स्वीकृत किया गया ।(9) शिखर सम्मेलन में विकासशील देशों की आर्थिक और सामाजिक उन्नति के मार्ग में आ रहे व्यवधानों को समाप्त करने की दिशा में प्रयास करने के लिए एक अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन बुलाने का प्रस्ताव भी किया गया ।(10) इस तरह का एक सम्मेलन जुलाई, 1962 में कैरो में आयोजित हुआ ।

कैरो सम्मेलन कई मायनों में महत्वपूर्ण था । इस सम्मेलन में तीसरी दुनिया के उन विकासशील देशों का सहयोग लेने पर भी स्वीकृति हुई जो सैनिक गुटों के सदस्य थे और गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के सदस्य नहीं थे क्योंकि तीसरी दुनिया के अन्य देशों और इन देशों के आर्थिक हितों में कोई असंगति नहीं थी । वस्तुत: कमोवेश तीसरी दुनिया के सभी विकासशील देशों के आर्थिक लक्ष्य और एक हद तक आर्थिक स्थितियां भी समान ही थीं । कैरो सम्मेलन में पहली बार विश्व अर्थव्यवस्था में बदलाव के संदर्भ में तीसरी दुनिया की आर्थिक मांगों को एक निश्चित स्वरूप देने का प्रयास किया गया । कैरो घोषणा-पत्र में कहा गया कि " अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक संबंधों के पुराने ढांचों को जारी रखने के प्रयास किये जा रहे हैं । " इन प्रयासों के कारण 'विकासशील देशों के आर्थिक विकास के रास्ते में बाधाएं उत्पन्न हो रही हैं ।(11) कैरो घोषणा पत्र के साथ ही

---

(9) वही अनु0 13

(10) वही अनु0 22

(11) विकासशील देशों का कैरो घोषणा-पत्र, कैरो, 1962 अनु0-7

अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक परिस्थितियों में बदलाव के लिए तीसरी दुनिया के समन्वित प्रयास शुरू हुए। इन प्रयासों के फलस्वरूप 1964 में 23 मार्च से लेकर 16 जून तक व्यापार और विकास पर प्रथम संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन(अंकटाड-I) जिनीवा में आयोजित हुआ। इसी दौरान विकासशील देशों के 77- समूह की स्थापना भी हुई। उसके बाद से 77- समूह तीसरी दुनिया की ओर से नयी अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की स्थापना की लड़ाई में एक स्थायी संस्था का कार्य कर रहा है। हालांकि अब इसमें 117 सदस्य हैं।(12)

अक्टूबर 1964 में कैरो में हुए दूसरे गुटनिरपेक्ष सम्मेलन में अंकटाड-I के निष्कर्षों पर फिर विचार किया। कैरो शिखर सम्मेलन के बाद जारी घोषणा पत्र के पूरे एक भाग में(भाग दस) में आर्थिक विकास और सहयोग के प्रश्नों की चर्चा की गयी। इसमें सभी देशों से आग्रह किया गया था कि वे :-

" एक नयी और न्यायोचित आर्थिक व्यवस्था के शीघ्र विकास में सहयोग दें जिसमें सभी देश बिना भय और संकट के भाग ले सकें तथा राष्ट्रों के परिवार में अपने उच्चतम विकास को प्राप्त कर सकें,(क्योंकि) अन्तरराष्ट्रीय व्यापार और विकास की वर्तमान संस्थाएं असमानताओं को कम करने में असफल रही हैं और विकसित और विकासशील देशों के बीच व्याप्त गंभीर असंतुलनों का परिमार्जन करने में असमर्थ रही हैं।(13)

---

(12) बारबरा वार्ड, भूमिका, श्रीदत्त रामफल, वन वर्ल्ड टू शेयर दिल्ली, 1980 पृ0

(13) "प्रोग्राम फार पीस एंड इंटरनेशनल को-आपरेशन" कैरो, अक्टूबर 1964, भाग

इससे स्पष्ट हो जाता है कि नयी अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की मांग 1974 से काफी पहले आरम्भ हो चुकी थी। केरो घोषणा-पत्र में स्पष्ट रूप से "एक नयी और न्यायोचित अर्थ व्यवस्था" के निर्माण की मांग की गयी थी। इसके पश्चात् गुटनिरपेक्ष आंदोलन की विभिन्न बैठकों और शिखर सम्मेलनों में तीसरी दुनिया के आर्थिक सवालों को लगातार उठाया जाता रहा। गुटनिरपेक्ष देशों का लुसाका शिखर सम्मेलन(1970) इस संदर्भ में मील का पत्थर कहा जा सकता है। इसमें आर्थिक प्रश्नों पर एक अलग घोषणा पत्र जारी किया गया। सम्मेलन में नयी अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की स्थापना के लिए एक खाका खींचा गया।

यहीं से नयी अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की स्थापना के लिये विकासशील देशों की लड़ाई का तीसरा दौर शुरु होता है। इसके बाद से गुटनिरपेक्ष आन्दोलन और तीसरी दुनिया के देशों ने अत्यन्त मुखरित स्वर में वर्तमान अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक ढाँचे में स्वरूपगत और संरचनात्मक परिवर्तन की मांग शुरु कर दी। गुटनिरपेक्ष आन्दोलन इस मांग का कर्णधार हो गया। अगस्त 1972 में जार्जटाउन, गुयाना में गुटनिरपेक्ष देशों की मंत्री स्तर की बैठक में नयी अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की स्थापना के लिए एक "एक्शन प्रोग्राम" को स्वीकृति दी गयी। इस प्रोग्राम में लगभग वे सभी बातें सम्मिलित थीं जिन्हें बाद में 1974 में संयुक्त राष्ट्र महासभा के विशेष सत्र में पारित किया गया। सितम्बर 1973 में गुटनिरपेक्ष देशों का चौथा शिखर सम्मेलन अल्जीयर्स

में आयोजित हुआ । इसमें जारी घोषणा-पत्र में विकासशील देशों की गंभीर आर्थिक स्थिति और विकसित और विकासशील देशों के बीच बढ़ती हुई आर्थिक असमानताओं पर गहरी चिन्ता व्यक्त की गयी । इसी सम्मेलन में यह निश्चय भी किया गया कि संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव से अनुरोध किया जाए कि वे आर्थिक विकास की समस्याओं पर महासभा का एक विशेष सम्मेलन बुलाएं । इस आशय के प्रस्ताव में कहा गया कि

"----- संयुक्त राष्ट्र संघ महासचिव से महासभा का उच्च राजनीतिक स्तर पर एक विशेष अधिवेशन बुलाने को कहा जाए, जिसमें केवल विकास की समस्याओं पर ही विचार किया जाए ।(14)-----

इसी प्रस्ताव के तहत संयुक्त राष्ट्र महा सभा के छठे और सातवें विशेष अधिवेशन 1974 में बुलाये गये जिसमें नयी अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की स्थापना के लिए तीसरी दुनिया के देशों के प्रस्तावों को औपचारिक रूप से पारित किया गया । इन में विकसित और विकासशील देशों के व्यापारिक संबंधों में संतुलन, जिंस कोष की स्थापना, तकनीकी हस्तांतरण, और उदार शर्तों पर वित्त की उपलब्धि के प्रस्ताव शामिल थे । अधिवेशन में आर्थिक कर्तव्य और अधिकारों पर एक चार्टर भी स्वीकृत किया गया । इसके बाद होने वाले गुटनिरपेक्ष सम्मेलनों में नयी अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की स्थापना की मांग दोहरायी जाती रही है । 1976 के कोलम्बो शिखर सम्मेलन में आर्थिक सहयोग के लिए

---

(14) गुट निरपेक्ष देशों की बैठकों के दस्तावेज, बेलग्रेड, 1978 पृ0 94

के लिये एक्शन प्रोग्राम के धीमे कार्यान्वन पर असन्तोष प्रकट किया गया।[16] क्यूबा की राजधानी हवाना में सितम्बर, 1979 में हुए शिखर सम्मेलन में नयी अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की स्थापना की मांग करते हुए गुटनिरपेक्ष व अन्य विकासशील देशों के बीच सामूहिक आत्मनिर्भरता बढ़ाने के लिए आर्थिक सहयोग पर बल दिया गया।[16] 1983 में नयी दिल्ली में हुए सातवें गुटनिरपेक्ष शिखर सम्मेलन में अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था में बदलाव के लिए उत्तर दक्षिण वार्ताओं का दौर शुरु करने की अपील की गयी।

इस दशक के दौरान गुट निरपेक्ष आन्दोलन और तीसरी दुनिया के देश अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था में बदलाव के लिए दो पहलुओं पर जोर देते रहे हैं। एक तो विकासशील देशों के मध्य आर्थिक सहयोग अधिक बढ़ाया जाये और दूसरे विकासशील और विकसित देशों के बीच वार्ताओं का दौर शुरु किया जाये। अर्थात्, उनका मानना था कि दक्षिण-दक्षिण सहयोग और उत्तर दक्षिण वार्ताओं के माध्यम से अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था में बदलाव लाया जा सकता है।

---

(15) एस० एस० मेहता, "नान एलाइनमेंट एंड द इंटरनेशनल इकनामिक आर्डर" के० पी० मिश्र, और के० आर० नारायणन (संपा०) नान एलाइनमेंट इन कन्टेम्परेरी इंटरनेशनल रिलेशंस, नयी दिल्ली पृ० 179

(16) वही

गुट निरपेक्ष देशों के इन प्रयासों और प्रतिष्ठित ब्रांट आयोग की रपट में अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक ढांचे में बुनियादी परिवर्तन की अनुशंसाओं के बावजूद भी विकासशील देशों के आर्थिक हालातों में कोई खास परिवर्तन नहीं आया है। वस्तुत: इनके हालात बदतर ही होते गये हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ की आर्थिक व सामाजिक परिषद् की जुलाई, 1986 के आरंभ में जिनीवा में होने वाली बैठक में रखी गयी एक रपट के अनुसार अधिसंख्य विकासशील देशों में जीवन स्तर लगातार नीचे गिर रहे हैं।[17] और तो और विकासशील देशों में कुछ समृद्ध माने जाने वाले अरब देशों की आर्थिक हालत भी तेल की लगातार गिरती कीमतों के कारण बिगड़ रही है। 'पीपुल्स डेली' में प्रकाशित एक समाचार के अनुसार 1985 में अरब देशों के ऊपर 120 अरब डालर कर्ज हो गया है जबकि 1980 में यह केवल 50 अरब डालर ही था।[18] निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि तमाम अन्तरराष्ट्रीय प्रयासों के बावजूद दुनिया के आर्थिक वातावरण में विकासशील देशों की दृष्टि से कोई खास परिवर्तन नहीं हुआ है। ब्रेटन वुड्स व्यवस्था पर आधारित वर्तमान अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था में जब तक बुनियादी संरचनात्मक परिवर्तन नहीं होते तब तक स्थिति में सुधार होने की बहुत अधिक संभावना नहीं दिखायी देती।

---

(17) संयुक्त राष्ट्र संघ, आर्थिक व सामाजिक परिषद् की बैठक में रखी गयी एक रपट, जिनीवा, जुलाई, 1986

(18) पीपुल्स डेली, पेइचिंग, 3 जुलाई, 1986

एक प्रश्न जो स्वाभाविक रूप से उठता है कि तीसरी दुनिया के विकास के लिए अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक परिस्थितियों में बदलाव लाने के लिये गुट निरपेक्ष आन्दोलन और तीसरी दुनिया के जो प्रयास चल रहे हैं उनमें राष्ट्रमंडल का क्या योगदान है ? अन्तरराष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न पहलुओं पर उसकी क्या सोच है ? और क्या राष्ट्रमंडल भी, अन्तरराष्ट्रीय समुदाय का एक सदस्य होने के नाते इन परिवर्तनों की दिशा में प्रयत्नशील है ? यदि हां तो कैसे ?

II

राष्ट्रमंडल और नयी अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था

राष्ट्रमंडल अपने आप में एक लघु विश्व सा दिखाई देता है। इसमें बृहत् जनसंख्या वाले भारत जैसे देश भी हैं तो आठ-आठ हजार जनसंख्या वाले नौरु और तुवालू जैसे देश भी।[20] इसमें आस्ट्रेलिया, कनाडा, न्यूजीलैण्ड और ब्रिटेन जैसे अति विकसित देश भी हैं तो बांग्लादेश जैसे अल्पविकसित (एल० डी० सी०) राष्ट्र भी। इस तरह की विविधता होने से राष्ट्रमंडल की दृष्टि भी अत्यन्त उदार है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि 1960 के दशक के प्रारम्भ में ही राष्ट्रमंडल का रूपान्तरण हो चुका था। एक समय का पूर्ण रूपेण श्वेत ब्रितानी राष्ट्रमंडल एशियाई अफ्रीकी राष्ट्रमंडल में परिणित हो गया था। राष्ट्रमंडल इस रूपान्तरण के बगैर अपनी वर्तमान भूमिका में जीवित भी नहीं रह सकता था। तीसरी दुनिया के विकासशील देशों ने जब अपने आर्थिक हकों की प्राप्ति के लिए नयी अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की मांग में आवाज उठानी आरम्भ की तो राष्ट्रमंडल के सामने दो रास्ते थे एक तो वह पहले की तरह एक क्लब के रूप में कार्यरत होकर इस घटनाक्रम से बेखबर रहता। लेकिन इस रास्ते को चुनने से एशिया - अफ्रीका के नवोदित देशों को राष्ट्रमंडल से कोई मोह नहीं रहता और हो सकता है कि वे इसकी सदस्यता को ही छोड़ देते। राष्ट्रमंडल के सामने दूसरा रास्ता था कि तीसरी दुनिया के इस प्रवाह की धारा से वह अपने आप को जोड़ लेता और अपने सीमित संसाधनों से वर्तमान अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन का प्रयास

---

(19) "कामनवेल्थ टुडे" राष्ट्रमंडल सचिवालय, लंदन, अगस्त 1985 पृ० -4

करता । ठीक ही राष्ट्रमंडल ने यह दूसरा रास्ता ही चुना । यह स्वाभाविक ही था क्योंकि राष्ट्रमंडल के 49 सदस्यों में से अधिकांश सदस्य तीसरी दुनिया के विकास शील राष्ट्र हैं । इनमें से भी अधिसंख्य देश गुट निरपेक्ष आन्दोलन के सदस्य हैं । इनमें भारत, तंजानिया, जांबिया और जिंबाब्वे जैसे देश भी हैं जो वर्तमान गुट निरपेक्ष आन्दोलन के अग्रणी राष्ट्रों में से हैं । इसलिये राष्ट्रमंडल शुरु से ही तीसरी दुनिया के आर्थिक हकों की वकालत में जुट गया । इसका अर्थ यह नहीं है कि वर्तमान अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक संरचना के बारे में राष्ट्रमंडल ने एकदम वही दृष्टिकोण अपनाया जो कि गुट निरपेक्ष आन्दोलन है, यह संभव भी नहीं था परन्तु उसने विकासशील देशों की समस्याओं के प्रति संवेदनशीलता भरे भाई-चारे का रुख अपनाया । इसके परिणामस्वरूप सामूहिक तौर पर राष्ट्रमंडल की आवाज अगर विकासशील देशों की मांगों को एकदम प्रतिध्वनित नहीं करती तो उससे अधिक भिन्न भी नहीं है ।

1965 में राष्ट्रमंडल सचिवालय और 1971 में तकनीकी सहयोग के लिये राष्ट्रमंडल कोष (C F T C) की स्थापना के बाद से उसने आर्थिक प्रश्नों की ओर ज्यादा ध्यान देना आरम्भ किया है । लेकिन 1975 में श्रीदत्त रामफल के महासचिव बनने के बाद से राष्ट्रमंडल की दृष्टि अधिकाधिक तृतीय विश्व परक हुयी है[20] । श्री रामफल पहले ऐसे

---

(20) आर्थर किलगोर व जेम्स मैयाल, "इकनामिक को-आपरेशन इन द कन्टेम्परेरी कामनवेल्थ," ए० जे० आर० गूम व पाल टेलर (संपा०) द कामनवेल्थ इन द 1980 ज, हांगकांग, 1984 पृ० 148

महा सचिव हैं जो कि विकासशील देश के नागरिक हैं। इसका व्यापक प्रभाव सचिवालय के क्रिया कलापों पर पड़ा है। उल्लेखनीय है कि इसके बाद से ही राष्ट्रमंडल ने अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक मुद्दों पर विभिन्न आयोग और समितियां नियुक्त की हैं। नयी अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की स्थापना की दिशा में प्रतिष्ठित ब्रांट आयोग द्वारा की गयी सिफारिशें अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इस आयोग की सिफारिशों में तीसरी दुनिया की आर्थिक मांगों का पूरा खुलासा किया गया है। इस संदर्भ में यह उल्लेख करना अनुपयुक्त न होगा कि वर्तमान राष्ट्रमंडल महासचिव श्रीदत्त रामफल भी इस आयोग के सदस्य थे।

19 जनवरी 1971 में सिंगापुर में हुये राष्ट्रमंडल शिखर सम्मेलन मेंराष्ट्रमंडल सिद्धान्तों का एक घोषणा-पत्र जारी किया गया। घोषणा-पत्र में कहा गया कि राष्ट्रमंडल देशों के राष्ट्राध्यक्ष/शासनाध्यक्ष " विश्वास करते हैं कि मानवता के विभिन्न वर्गों में व्याप्त असमानताएं असहनीय हैं। इनसे क्षत्र विश्व में तनाव पैदा होते हैं। हमारा उद्देश्य इनको उत्तरोत्तर कम करना है। इसलिए हम निश्चय करते हैं कि गरीबी, अज्ञान और व्याधियों को दूर करने तथा जीवन स्तर ऊंचा करने एवं अधिक साम्यता से परिपूर्ण अन्तरराष्ट्रीय समाज की प्राप्ति में हम अपने प्रयत्न लगायेंगे।[21] घोषणा-पत्र में मुक्त स्वतन्त्र विश्व व्यापार और विकासशील देशों को समुचित वित्तीय स्रोतों के प्रवाह की बात भी कही गयी है।

---

(21) <u>द डिक्लेरेशन आफ कामनवेल्थ प्रिंसिपल्स</u>, राष्ट्रमंडल सचिवालय लंदन, 1985

इस तरह देखा जा सकता है कि विश्व व्यापार में संतुलन लाने और तीसरी दुनिया को वित्त उपलब्ध कराने जैसे मुद्दों पर राष्ट्रमंडल ने 1970 के दशक के प्रारम्भ से ही एक तृतीय विश्व परक दृष्टिकोण अपनाना आरम्भ कर दिया । 1973 के ओटवा राष्ट्रमंडल शिखर सम्मेलन में भी विश्व के आर्थिक वातावरण में सुधार की मांग दोहरायी गयी । इसके बाद अप्रैल 1975 में किंग्स्टन, जमैका में आयोजित राष्ट्रमंडल शिखर सम्मेलन नयी अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की स्थापना की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण था । इस सम्मेलन की पृष्ठभूमि में संयुक्त राष्ट्र महासभा का 1974 में हुआ छठा विशेष अधिवेशन था । इस विशेष अधिवेशन में संयुक्त राष्ट्र महासभा ने नयी अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की स्थापना के लिए एक प्रस्ताव पारित किया था । इसका प्रभाव राष्ट्रमंडलीय गतिविधियों पर पड़ना स्वाभाविक था । सम्मेलन में "न्यायोचित और समानता पर आधारित नयी अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की शीघ्र स्थापना की दिशा में प्रयास करने की आवश्यकता"(22) महसूस की गयी । इस सम्मेलन में "गरीब और अमीर देशों के बीच की खाई को पाटने के लिए व्यावहारिक कदम"(23) सुझाने के लिये राष्ट्रमंडल देशों के विशेषज्ञों का एक दल बनाने का निर्णय लिया गया । इस दल का प्रमुख एलिस्टर मेकिन्टायर को नियुक्त किया गया । श्री मेकिन्टायर के

---

(22) दुवर्डस ए न्यू इंटरनेशनल इकनोमिक आर्डर रिपोर्ट, बाई कामनवेल्थ एक्सपर्ट ग्रुप, राष्ट्रमंडल सचिवालय, लंदन 1975 पृ0 51

(23) वही

अतिरिक्त दस अन्य प्रतिष्ठित विद्वानों और विशेषज्ञों को इस दल में नियुक्त किया गया। मैकिन्टायर आयोग के नाम से विख्यात इस विशेषज्ञ दल ने अपनी पहली अन्तरिम रपट सितम्बर, 1975 में पेश की। मार्च, 1976 में इस आयोग ने दूसरी अन्तरिम रपट प्रस्तुत की। आयोग ने अपनी अंतिम रपट "टुवर्ड्स ए न्यू इंटरनेशनल इकनोमिक आर्डर" शीर्षक से मार्च, 1977 में प्रस्तुत की।[25]

मैकिन्टायर आयोग की रपट के शीर्षक से ही स्पष्ट है कि अब तक राष्ट्रकुल किस सीमा तक तृतीय विश्व के आर्थिक सन्दर्भों से स्वयं को जोड़ चुका था। इस रपट में गरीबी, जिंस समझौता, व्यापार प्रतिबन्धों की समाप्ति, विकासशील देशों के बीच आर्थिक सहयोग, अनाज उत्पादन व कृषि विकास, औद्योगिक सहयोग व तकनीकी के हस्तांतरण, स्रोतों के हस्तांतरण और अन्तरराष्ट्रीय संस्थाओं में परिवर्तन के बारे में अनुशंसाएं की गयीं।[25]

नयी अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था के बारे में राष्ट्रमंडल दृष्टिकोण को जानने में मैकिन्टायर आयोग की रपट महत्वपूर्ण योगदान देती है। इस दृष्टि से भी यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण दस्तावेज है कि यह ब्रांट आयोग की रपट से काफी पहले आयी। वस्तुत: ब्रांट आयोग की सिफारिशें मैकिन्टायर आयोग की सिफारिशों से बहुत भिन्न नहीं हैं। एक

---

(24) आर्थर विलगोर व जेम्स मेंगाल, "इकनोमिक को-आपरेशन इन कन्टेम्परेरी कामन वेल्थ - ए० जे० आर० ग्रूम व पाल टेलर (संपा०) कामनवेल्थ इन द 1980 ज, हांग कांग, 1984, पृ० 154

(25) "टुवर्ड्स ए न्यू इंटरनेशनल इकनोमिक आर्डर," रिपोर्ट बाई ए कामनवेल्थ एक्सपर्ट ग्रुप, लंदन 1975 पृ० 11

तरह से उनको इनका व्यापक और विस्तृत रूप ही कहा जा सकता है। तीसरी दुनिया के देशों के विकास की दिशा में राष्ट्रमंडल प्रयासों की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी होने से मैकिन्टायर आयोग की रपट की विस्तृत समीक्षा करना उपयोगी होगा। अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था के विभिन्न पहलुओं पर विचार करते हुए इस रपट को नौ भागों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक भाग में पहले समस्या का आकलन किया गया है और फिर उसके निराकरण के लिए कुछ उपाय सुझाए गए हैं।

गरीबी की चर्चा करते हुए इस रपट में कहा गया है कि "दुनिया के करीब चार हजार मिलियन (6 अरब) लोगों में से एक हजार दो सौ मिलियन उन देशों में रहते हैं जहां प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय दो सौ डालर प्रतिवर्ष से भी कम है। - - - - - वहीं दूसरी ओर छह सौ मिलियन - - - - - व्यक्ति उन देशों में रहते हैं जहां प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय दो हजार से पांच हजार छह सौ डालर प्रति वर्ष है।[26] इस रपट में स्वीकार किया गया है कि गरीब और अमीर देशों के रहन सहन के स्तर, धन, तकनीकी और सामाजिक - आर्थिक ढांचे में बहुत बड़ा अन्तर है। इस अन्तर को कम करने के लिए" विकसित देशों की अर्थ व्यवस्थाओं और अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक ढांचे के साथ ही विकासशील देशों की अर्थव्यवस्थाओं में - - - - - क्रान्तिकारी परिवर्तन "करने होंगे।[27]

---

(26) वही पृ0 16

(27) वही

रपट में कहा गया है कि इस उद्देश्य को एक दीर्घकालीन नीति द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। आयोग ने स्वीकार किया है कि विकासशील देशों में गरीबी अगर बनी रहती है तो यह विश्व अर्थ व्यवस्था के लिये घातक है। विकासशील देशों की गरीबी दूर करने के लिए "विश्व आर्थिक गतिविधियों का उचित वितरण[28] आवश्यक है। इसके लिए "कार्य कुशलता" और "तुलनात्मक लाभ" के अनुसार आर्थिक क्रिया कलापों का वितरण होना चाहिए। जिसके लिये विकसित और विकासशील देशों में "संरचनात्मक परिवर्तनों की आवश्यकता" है। रपट में " विकासशील देशों द्वारा आत्मनिर्भरता की दिशा में व्यक्तिगत और सामूहिक प्रयास करने की "[29] अनुशंसा भी की गयी है। क्योंकि विकास प्रक्रिया बाहर से "थोपी नहीं जा सकती" यह स्वतः स्फूर्त होनी चाहिए। आयोग ने खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि और ग्राम्य विकास की आवश्यकता पर भी बल दिया है। रपट में कहा गया है कि गरीबी दूर करने के विकासशील देशों के प्रयास तभी प्रभावी होंगे जबकि उनको " आवश्यक बाह्य वातावरण और सहायता प्राप्त हो। उचित शर्तों पर तकनीकी का प्रभावी हस्तांतरण विकासशील देशों के लिये बहुत मददगार हो सकता है"[30]

जिंस व्यवस्था (commodity agreement) की चर्चा में व्यापार के महत्व को स्वीकारते हुये रपट में कहा गया है कि " नयी

---

(28) वही पृ0 18

(29) वही पृ0 19

(30) वही पृ0 20

अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था का उद्देश्य एक ऐसी परस्पर आश्रित विश्व अर्थव्यवस्था का निर्माण है जिसमें वस्तुओं और सेवाओं के विनिमय और पूंजी के अन्तरराष्ट्रीय प्रवाह से सभी देश समान रूप से लाभान्वित हो सकें।'(31) अर्थात् आय के अन्तरराष्ट्रीय वितरण में व्यापार की एक महत्वपूर्ण भूमिका है। इसके लिए रपट में " एक न्यायोचित, गतिशील और सन्तुलित अन्तरराष्ट्रीय व्यापार व्यवस्था कायम करने के लिए" अन्तरराष्ट्रीय समुदाय से प्रभावी कदम उठाने की अपील की गयी है।(32) आयोग ने जिंसों के व्यापार के लिए एक समन्वित नीति तैयार करने के लिए व्यापक समझौता करने का सुझाव दिया है। विश्व व्यापार में बाजार व्यवस्था के महत्व को स्वीकार करते हुए भी रपट में कहा गया है कि इस बाजार व्यवस्था में खरीदारों और विक्रेताओं दोनों को समान लाभ होना चाहिए जबकि ऐसा नहीं हो रहा है, वर्तमान व्यवस्था में विकासशील देश मोलभाव करने की स्थिति सुदृढ़ न होने से सदैव घाटे में रहते हैं। इसमें विकासशील देशों को जिंसों के उचित मूल्य दिलाने और बाजार के उतार चढ़ावों से उन्हें बचाने के लिए उपाय करने की सिफारिश की गयी है। इसमें अंकटाड द्वारा स्वीकृत समन्वित कार्यक्रम को भी स्वीकृति दी गयी है। अंकटाड ने सिफारिश की थी कि जिंस बाजार में विकासशील देशों की स्थिति बेहतर करने के लिए (क) कुछ जिंसों में अन्तरराष्ट्रीय बफर स्टाक बनाए जाएं;

---

(32) वही, भाग-2 पृ0 22

(33) वही

(ख) इन बफर स्टाकों की वित्तीय मदद के लिए एक सामान्य कोष बनाया जाए ;

(ग) जिंसों के उत्पादक और आयातक देशों को मिलाकर बहुपदीय संस्थाएं कायम की जाएं जो इन जिंसों की खरीद फरोख्त में मददगार होंगी ;

(घ) इस सबके बावजूद कीमतों में उतार चढ़ाव से होने वाले घाटों को पूरा करने के लिए अतिरिक्त वित्त की उपलब्धता की व्यवस्था की जाए और ;

(ङ.) जिंस उत्पादक देशों में जिंसों की "प्रोसेसिंग" और उत्पादन में विविधता लाने के प्रयास किए जाएं ।[33]

मैकिन्टायर आयोग ने अंकटाड द्वारा प्रस्तावित सामान्य जिंस कोष की जोरदार वकालत की । उसने अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक से अन्तरराष्ट्रीय बफर स्थापित करने में सहायता देने की अपील भी की । विकसित देशों से आग्रह किया गया है कि वे व्यापार प्रतिबन्धों को समाप्त करें ।

विकासशील देशों के मध्य आर्थिक सहयोग में वृद्धि नयी अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की स्थापना का एक विशिष्ट पहलू है । इसके लिए क्षेत्रीय आर्थिक सहयोग में वृद्धि आवश्यक है । मैकिन्टायर रपट में क्षेत्रीय आर्थिक क्रिया कलापों में वृद्धि, संयुक्त उपक्रम लगाने और तकनीकी सहयोग बढ़ाने की सिफारिश की गयी । रपट में स्वीकार किया गया है कि

---

(33) वही पृ0 24

हो सकता है कि "इसके मुख्य लाभ" क्षेत्र के "अधिक विकसित" विकासशील देश को हों। इसके लिए क्षेत्रीय स्तर पर विशेष नीति बनायी जानी चाहिए ताकि क्षेत्रीय सहयोग का लाभ अल्पविकसित देशों तक पहुंच सके। इस दिशा में अन्तरराष्ट्रीय समुदाय को अल्पविकसित देशों की मदद करनी चाहिए।(34) अन्तर क्षेत्रीय सहयोग बढ़ाने के लिए अन्तरराष्ट्रीय समुदाय को प्रयास करना चाहिए। आयोग ने सिफारिश की थी कि क्षेत्रीय स्तर पर मूलभूत आर्थिक ढांचे की स्थापना के लिए अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर निवेश में वृद्धि होनी चाहिए।

विकासशील देशों में गंभीर खाधान्न संकट की ओर भी मैकिन्टायर आयोग ने अपना ध्यान दिया। विकासशील देशों के बढ़ते हुए खाधान्न आयातों की ओर इंगित करते हुए रपट में कहा गया है कि "1972 को समाप्त होने वाले दशक के दौरान विकासशील देशों द्वारा खाधान्न के आयात में चालीस प्रतिशत वृद्धि हुई।"(35) यह वृद्धि चिन्ताजनक है इसी के कारण नवंबर, 1974 में विश्व खाधान्न सम्मेलन बुलाना पड़ा। इस सम्मेलन की सर्वसम्मत राय थी कि इस स्थिति से बचने का एक मात्र उपाय विकासशील देशों में कृषि और ग्रामीण विकास है। मैकिन्टायर आयोग ने स्वीकार किया कि "सभी अन्तरराष्ट्रीय और राष्ट्रीय प्रयासों में खाधान्न उत्पादन और ग्रामीण विकास की समस्या को उच्चतम प्राथमिकता दी जानी चाहिए।"(36) इस दिशा में खाधान्न की कमी

---

(34) वही पृ0 33

(35) वही पृ0 35

(36) वही पृ0 35

वाले देशों में मूलभूत आर्थिक ढांचे को मजबूत करने, विकसित देशों द्वारा अधिक उर्वरक उपलब्ध कराने और इन देशों में मत्स्य उद्योग के विकास के लिए सहायता करने का सुझाव आयोग ने दिया।

मैकिन्टायर आयोग ने विकसित और विकासशील देशों के मध्य औद्योगिक संबंधों को और प्रगाढ़ करने पर जोर दिया। उसने विकसित देशों से आग्रह किया कि विकासशील देशों के औद्योगिक विकास में मदद देने के लिए वे उदार शर्तों पर तकनीकी का हस्तांतरण करें। स्थानीय आवश्यकताओं को देखते हुए उचित तकनीकी के विकास के लिए अन्तरराष्ट्रीय सहयोग में वृद्धि की सिफारिश भी आयोग ने की। संयुक्त राष्ट्र औद्योगिक विकास संगठन(U N I D O) को मजबूत करने का आग्रह करते हुए रपट में कहा गया कि संगठन को अपनी प्राथमिकताएं तय करने के मामले में और सजग रहना चाहिए ताकि यह अपनी भूमिका को और सार्थक तथा प्रभावी तरीके से निभा सके।

नयी अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की स्थापना के संदर्भ में विकासशील देशों की एक प्रमुख मांग है अन्तरराष्ट्रीय वित्तीय साधनों का उचित बंटवारा। इसके अन्तर्गत उनकी मांग है कि उन्हें उदार और आसान शर्तों पर वित्त उपलब्ध हो। मैकिन्टायर आयोग ने इस क्षेत्र में अपने अध्ययन को आधिकारिक विकास सहायता (Official Development Assistance) के अध्ययन तक ही सीमित रखा। रपट में विकसित देशों द्वारा सहायता राशि के अंशदान में निरन्तर कमी पर चिन्ता प्रकट की गयी है। इसके अनुसार 1963 में विकसित देश अपनी कुल राष्ट्रीय आय का 0-51 प्रतिशत सहायता के रूप में दे रहे थे। यह 1972

में घटकर 0-33 प्रतिशत और 1973 में 0-30 प्रतिशत रह गया ।[38] अमेरिका और ब्रिटेन द्वारा सहायता राशि में की जा रही कमी पर आयोग ने विशेष चिन्ता प्रकट की ।[39] विकासशील राष्ट्रों की भुगतान संतुलन की गंभीर समस्या का उल्लेख करते हुए रपट में कहा गया कि " दुनिया के अधिकांश भाग में विकास की प्रक्रिया को चालू रखने के लिए और कई अधिक गरीब देशों में न्यूनतम जीवन स्तर को बनाए रखने के लिए संसाधनों के हस्तांतरण में वृद्धि होना जरूरी है । "[40] विकसित देशों से आग्रह किया गया कि आधिकारिक विकास सहायता के अन्तर्गत कुल राष्ट्रीय उत्पाद के 0-7 प्रतिशत भाग को देने के अपने वचन को वे निभाएं । न केवल इतना बल्कि रपट में कहा गया कि आधिकारिक विकास सहायता का लक्ष्य 1980 तक विकसित देशों के कुल राष्ट्रीय उत्पादन का एक प्रतिशत होना चाहिए ।[41] अल्पकालिक उपाय के रूप में गंभीर आर्थिक समस्याओं का सामना कर रहे देशों को अन्तरिम रूप में अतिरिक्त सहायता का सुझाव आयोग ने दिया ।

नयी अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की स्थापना के सिलसिले में विकासशील देशों की एक महत्वपूर्ण मांग अन्तरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों के ढांचे में सुधार करना है । अन्तरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाएं जैसे विश्व बैंक और अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष का संचालन विकसित देशों के हाथों

----

(38) वही पृष्ठ 41

(39) वही

(40) वही पृ0 43

(41) वही पृ0 44

में होने से विकासशील देशों के हितों की प्रायः उपेक्षा होती है। मैकिन्टायर आयोग ने इन संस्थाओं के प्रकार्यों और ढाँचे दोनों में बदलाव का समर्थन किया। इसमें भी संरचनात्मक सुधारों पर अधिक बल दिया गया। रपट के अनुसार "अन्तरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं के नियंत्रण और प्रबन्ध में विकसित और विकासशील देशों के बीच जो गंभीर असन्तुलन है उसे बिना किसी देरी के दूर किया जाना चाहिए।"(42) इन संस्थाओं में वित्तीय भाग के अनुपात में वोट आवंटित करने की व्यवस्था उचित नहीं है। रपट में राष्ट्रकुल के वित्त मंत्रियों से आग्रह किया गया कि वे इस दिशा में प्रयास करें और विकासशील देशों को इन संस्थाओं में अधिक प्रतिनिधित्व दिलाने के लिए प्रयत्नशील हों।

इस तरह देखा जा सकता है कि राष्ट्रमंडल की दृष्टि नयी अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की स्थापना के विभिन्न पहलुओं पर विकासशील देशों के नजरिये से भिन्न नहीं थी। मैकिन्टायर आयोग की रपट इसका ज्वलन्त उदाहरण है। कम से कम सोच के तौर पर विकासशील देशों के हितों के साथ राष्ट्रमंडल ने स्वयं को जरूर जोड़ा। यह ठीक है कि ब्रिटेन और कनाडा जैसे देशों तक ने इन सिफारिशों को लागू नहीं किया। वस्तुतः अन्तरराष्ट्रीय संबंध इस कदर जटिल हैं कि लागू करने के मुद्दे पर ऐसी सभी रपटें चाहें वह मैकिन्टायर रपट हो अथवा ब्रांट आयोग की रपट, निरर्थक हो जाती हैं। इसलिए इसका दोष

---

(42) वही पृ० 49

राष्ट्रमंडल के माथे नहीं मढ़ा जा सकता क्योंकि वह कोई ऐसा संगठन नहीं है जिसके सुझाव आदेशात्मक रूप से लागू होते हों। राष्ट्र-राज्य की वर्तमान अवस्था को देखते हुए ऐसे किसी भी अन्तरराष्ट्रीय संगठन की कल्पना नहीं की जा सकती जो अपने आदेशों को आदेशात्मक रूप में लागू करवा सके। लागू न होने के कारण मात्र से ही मैकिन्टायर आयोग की रपट का महत्व कम नहीं हो जाता क्योंकि अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक प्रश्नों पर राष्ट्रमंडल के दृष्टिकोण को समझने में हमें यह खासी मदद देती है।

1977 में लंदन में राष्ट्रकुल देशों का अगला शिखर सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में सामान्य आर्थिक मुद्दों पर विचार हुआ और सम्मेलन में सामान्य जिंस कोष पर लार्ड कैम्पबैल की अध्यक्षता में एक समिति स्थापित करने का निर्णय लिया गया। इस समिति ने अपनी रपट सितम्बर, 1977 में प्रस्तुत की।(43) इस रपट में अंकटाड-IV में जिंसों के लिए समन्वित कार्यक्रम (Intregated Programme for commodities) को समर्थन दिया गया। कैम्पबैल रपट में उपर्युक्त कोष की स्थापना के लिए एक एक्शन प्रोग्राम का भी सुझाव दिया गया। इसके आधार पर सामान्य कोष की स्थापना के लिए राष्ट्रमंडल देशों में एक समझौता भी हुआ परन्तु 1982 तक केवल 22 सदस्यों ने इसे अपनी स्वीकृति दी थी।(44)

---

(43) आर्थर किलगोर व जेम्स मेआल, "इकनोमिक को-आपरेशन इन कन्टेम्परेरी कामनवेल्थ", ए० जे० आर० ग्रूम व पाल टेलर(संपा०) _द कामनवेल्थ इन द 1980 ज_, हांगकांग, 1984, पृ० 155

(44) वही पृ० 156

राष्ट्रकुल देशों का अगला सम्मेलन 1979 में लुसाका में आयोजित हुआ । इस सम्मेलन में भी एक विशेषज्ञ समिति की स्थापना की गयी । आस्ट्रेलिया के प्रोफेसर हाइंज आर्न्ट की अध्यक्षता में गठित इस समिति से विकसित और विकासशील देशों में विकास दर तेज करने के लिए सुझाव देने को कहा गया था । "द वर्ल्ड इकनामिक क्राइसिस : ए कामनवेल्थ पर्सपेक्टिव" नामक शीर्षक से इस समिति की रपट 1980 में प्रकाशित हुई ।(45) इस रपट में भी तीसरी दुनिया के विकास के मुद्दों का तृतीय विश्व परक दृष्टि से विश्लेषण किया गया ।

पिछले दशक के अन्तिम वर्षों में अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था में बदलाव के लिए विकसित और विकासशील देशों के बीच बहुपक्षीय बातचीत पर जोर दिया जाना शुरु हो गया था । इसके अन्तर्गत तीसरी दुनिया के देशों व अन्य कई अन्तरराष्ट्रीय विशेषज्ञों ने अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था में सुधार के लिए उत्तर-दक्षिण वार्ताओं का प्रस्ताव किया था । उनके अनुसार विकसित और विकासशील देशों के आर्थिक हितों में पारस्परिकता है ।(46) एक के विकास के बिना दूसरे का विकास सम्भव नहीं है । इस विचार के पनपने का कारण विश्व व्यापक मंदी का वह दौर था जिसके कारण विकासशील देशों को ही नहीं बल्कि विकसित देशों को भी आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा था ।

---

(45) वही

(46) श्रीदत्त रामफल, "व्हाई द नार्थ नीड्स द साउथ, ब्रिटेन के हाउस आफ कामन्स में यूरोपीय अटलांटिक समूह के समक्ष दिया गया भाषण, श्रीदत्त रामफल, वन वर्ल्ड टू शेयर दिल्ली, 1979 पृ० 106

विकसित और विकासशील देशों का साँफा मंच होने के कारण राष्ट्रमंडल इन वार्ताओं में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता था। इसी कारण उसने इसकी ओर ध्यान देना आरम्भ किया। 1981 का मेलबोर्न राष्ट्रकुल शिखर सम्मेलन इसी की पृष्ठभूमि में हुआ। मेलबोर्न घोषणा-पत्र में अन्य आर्थिक मुद्दों के साथ-साथ उत्तर दक्षिण वार्ताओं के दौर की भी आवश्यकता पर भी बल दिया। इस घोषणा-पत्र में स्वीकार किया गया कि "विश्व में धन और अवसरों की वर्तमान गंभीर असमानताएं और गरीबी का दुष्चक्र जिससे विकासशील देशों के लाखों नागरिक जूफ रहे हैं, ही विश्व में तनाव और अस्थायित्व का मूलभूत कारण है," राष्ट्रमंडल का यह मानना है कि "इस दुष्चक्र को तोड़ने के लिए राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर[47] निश्चित और निष्ठापूर्ण कदम उठाने की आवश्यकता है। इसमें विकसित देशों से कहा गया कि वे अपने "स्वयं के हित" में ही "पूर्वाग्रह त्याग कर" इन वार्ताओं के प्रति एक "रचनात्मक और सकारात्मक"[48] दृष्टिकोण अपनायें। घोषणा पत्र में विश्व की आर्थिक समस्याओं का सामना करने के लिए "सामूहिक कदम उठाने और एक अन्तरराष्ट्रीय दृष्टिकोण अपनाने" की अपील की गयी। इसमें एक "अधिक न्यायोचित आर्थिक व्यवस्था की स्थापना के लिए अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक संबंधों में संरचनात्मक और संस्थागत परिवर्तन लाने"[49] की राष्ट्रमंडलीय अपील को पुन: दोहराया गया।

((47) "नार्थ-साउथ इश्यूज एट मेलबोर्न," राष्ट्रमंडल सचिवालय, मेलबोर्न अक्टूबर, 1981 पृ0-3

(48) वही पृ0 4

(49) राष्ट्रमंडल के मेलबोर्न शिखर सम्मेलन के बाद जारी घोषणा पत्र राष्ट्रमंडल सचिवालय लंदन अक्टूबर, 1981 पृ0 13

मेलबोर्न शिखर सम्मेलन में यह महसूस किया गया कि अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था में बुनियादी परिवर्तनों के लिए बहुपक्षीय वार्ताओं के दौर अत्यन्त आवश्यक हैं। उत्तर दक्षिण वार्ताओं के दौर में पिछले समय में आये हुए गतिरोध पर चिन्ता व्यक्त करते हुए इस सम्मेलन में एक विशेषज्ञ दल के गठन का निर्णय लिया गया। नाइजीरिया के उच्चायुक्त बी.आकपोरोड क्लार्क की अध्यक्षता में गठित इस दल को उत्तर-दक्षिण वार्ताओं के दौर में आये गतिरोध के कारणों और इस प्रक्रिया को पुन: प्रारम्भ करने के उपायों को रेखांकित करने का कार्य सौंपा गया। नौ सदस्यीय इस आयोग ने नंबर 1982 में "द नार्थ-साउथ डायलाग : मेकिंग इट वर्क" शीर्षक से अपनी रपट प्रस्तुत की। आयोग ने अनुभव किया कि विकसित और विकासशील देशों में परस्पर अविश्वास और संदेह का वातावरण पैदा हुआ है इससे वार्ताओं के क्रम में अवरोध उत्पन्न हुआ है।(50) यदि परस्पर अविश्वास का यह वातावरण समाप्त नहीं होता और बातचीत में कोई प्रगति नहीं होती तो "अन्तरराष्ट्रीय व्यवस्था के स्थायित्व" के समक्ष गंभीर संकट उत्पन्न हो जाएगा। आयोग की रपट में विकसित और विकासशील देशों से परस्पर सहिष्णुता और समझदारी का वातावरण पैदा करने का आग्रह किया गया। इसमें विकासशील देशों से संयमित और आग्रहपूर्ण नीति अपनाने की सिफारिश की गयी। विकसित देशों से आग्रह किया गया कि वे अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था में पारस्परिकता और अन्योन्याश्रितता के सिद्धान्त को न भूलें। उनसे अपील की गयी कि वे परिपक्व नेतृत्व का परिचय देते हुए दूरदर्शिता

---

(50) "कामन वैल्थ फार्मूला टू हैल्प द वर्ल्ड नैगोशिएट" कामनवैल्थ करैन्ट्स, लदंन दिसम्बर 1982, पृ04

से काम लें और इस बात का अहसास करें कि बहुपक्षीयता और सामूहिक सौदेबाजी से अन्तरराष्ट्रीय व्यवस्था में वांछित परिवर्तन किये जा सकते हैं। न केवल पश्चिम के विकसित राष्ट्रों से अपितु रूस व पूर्वी यूरोप की आयोजित व केन्द्रित अर्थव्यवस्थाओं वाले देशों से आयोग ने आग्रह किया गया कि वे वांछित परिवर्तनों के लिए बहुपक्षीय बातचीत में अपना योगदान दें।(51)अन्य बातों के अलावा तृतीय विश्व का सचिवालय बनाने, अन्तरराष्ट्रीय संस्थाओं जैसे अंकटाड, विश्व बैंक एवं अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष की गतिविधियों में अधिक समन्वय लाने, संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा उत्तर-दक्षिण वार्ताओं में सक्रिय भूमिका निभाने, एक मुद्दे पर आधारित सम्मेलनों की संख्या बढ़ाने और विकसित देशों में जनमत को तृतीय विश्व की मांगों के अनुकूल बनाने के लिए अभियान शुरु करने की अनुशंसा की।(52)

ब्रान्ट आयोग की कई सिफारिशों को सर्वथा मौलिक कहा जा सकता है। जैसे कि तृतीय विश्व सचिवालय की स्थापना का प्रस्ताव। लेकिन रपट में प्रस्तावित तृतीय विश्व सचिवालय के स्वरूप, उसकी संरचना तथा उसकी संगठना के बारे में कुछ नहीं कहा गया। यह प्रस्ताव दिलचस्प तो है, परन्तु व्यावहारिक तौर पर इसे लागू करना खासा मुश्किल है। आयोग की अन्य सिफारिशें भी महत्वपूर्ण और ध्यान देने योग्य हैं। लेकिन इनके साथ भी वही बड़ा सा प्रश्नचिन्ह लगा है कि यह सब ठीक भी है और उचित भी परन्तु यह होगा कैसे? इसका उत्तर आयोग के पास तो क्या, शायद किसी के भी पास नहीं है। अस्तु

---

(51) वही

(52) वही

राष्ट्रमंडल के एक अन्य विशेषज्ञ दल ने विश्व में बढ़ रहे व्यापारिक संरक्षणवाद के बारे में एक रपट "टूवर्ड्स ए न्यू ब्रेटनवुड्स : चैलेंजज फार द वर्ल्ड फाइनेन्शियल एंड ट्रेडिंग सिस्टम" नामक शीर्षक से जारी की। इस विशेषज्ञ दल के अध्यक्ष कनाडा के प्रोफेसर गेराल्ड हैलीनर थे। राष्ट्रमंडल के वित्तमंत्रियों ने सितम्बर 1983 में पोर्ट आफ स्पेन की अपनी बैठक में इस रपट पर विचार किया। रपट में अन्तरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों खासकर विश्व बैंक के उदार वित्त सुलभ कराने वाले अभिकरण अन्तरराष्ट्रीय विकास अभिकरण, को और प्रभावी बनाने की सिफारिश की गयी ताकि निर्धनतम देशों के विकास में यह एक सार्थक भूमिका का निर्वाह कर सके।[53]

राष्ट्रमंडल देशों के नवंबर 1983 में दिल्ली में हुए शिखर सम्मेलन में भी विश्व के आर्थिक वातावरण में परिवर्तन लाने के पुराने संकल्पों को दोहराया गया। इस अवसर जारी आर्थिक विज्ञप्ति में कहा गया कि मेलबोर्न शिखर सम्मेलन के बाद से अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक स्थिति में सुधार के कुछ संकेत तो मिलते हैं परन्तु सुधारों की गति असमान है। सुधारों की इस गति पर सम्मेलन में असन्तोष व्यक्त किया गया। राष्ट्रमंडल के शासनाध्यक्षों ने कहा कि विकसित और विकासशील देशों के बीच उत्पन्न "मतभेदों और संदेहों को समाप्त करने में राष्ट्रमंडल एक व्यावहारिक और विशिष्ट भूमिका अदा कर सकता है"[54] क्योंकि यह दोनों का एक साझा मंच है।

---

(53) "फाइनेंस मिनिस्टर्स पाइंट टूवार्ड्स न्यू दिल्ली," कामनवेल्थ करेन्ट्स, दिसम्बर 1983 पृ० 5

(54) द न्यू दिल्ली स्टेटमेंट आफ इकनामिक एक्शन, राष्ट्रमंडल सचिवालय, लंदन, नवंबर 1983 पृ०-5

बहामा की राजधानी नसाऊ में राष्ट्रमंडल देशों का अगला शिखर सम्मेलन अक्टूबर 1985 में हुआ। सम्मेलन में अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन हेतु राष्ट्रमंडल संकल्पों को एक बार फिर दोहराया गया। अधिसंख्य विकासशील देशों विशेषकर अफ्रीका के सब-सहारा क्षेत्र में बसे देशों की गंभीर आर्थिक स्थिति पर चिन्ता प्रकट करते हुए सम्मेलन में विकसित देशों से आग्रह किया गया कि वे तृतीय विश्व की वित्तीय आवश्यकताओं के प्रति और उदार तथा सहिष्णुतापूर्ण दृष्टिकोण अपनाएं। विकासशील देशों को विदेशी सहायता की लगातार कमी पर भी गंभीर चिन्ता व्यक्त की गयी।[55] नसाऊ घोषणा-पत्र के आरम्भ में ही स्वीकार कियागया कि " अन्तरराष्ट्रीय सहयोग एक विकल्प नहीं अपितु आवश्यकता है।"[56]

इस तरह स्पष्ट देखा जा सकता है कि राष्ट्रमंडल एक मायनों में तृतीय विश्व का एक मंच बन गया है। यह बात सही है कि इसके घोषणा पत्रों में उतनी प्रखरता नहीं होती, उनमें सुधारवादी स्वर प्राय: मुखर होता है परन्तु इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि उसने अपने आप को तृतीय विश्व के आर्थिक लक्ष्यों के साथ पूर्णरूपेण जोड़ा ही नहीं बल्कि उन्हें आत्मसात भी किया है। विभिन्न राष्ट्रमंडलीय शिखर सम्मेलनों के घोषणा-पत्र और समय-समय पर बिठाए गये आयोगों की अनुशंसाएं इस बात का प्रतीक है कि राष्ट्रमंडल तृतीय विश्व की आर्थिक आकांक्षाओं की प्रतिमूर्ति बन गया है। यह अलग-बात है कि उन आकांक्षाओं

---

(55) "द नसाउ कम्युनिके" राष्ट्रमंडल सचिवालय, लंदन, अक्टूबर, 1985 पृ0 21

(56) वही पृ0 -1

की पूर्ति नहीं हो सकी है। लेकिन जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि राष्ट्रमंडल स्वतंत्र और सार्वभौम देशों की एक स्वैच्छिक संस्था है। अन्य अन्तरराष्ट्रीय संगठनों के समान ही उसके पास कोई ऐसी शक्ति नहीं है जिससे वह अपनी इच्छाओं को अपने सदस्यों से मनवा सके। राष्ट्रमंडल की आलोचना इस बात को लेकर भी की जा सकती है कि नयी अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की स्थापना में उन विकसित देशों ने भी कोई विशेष प्रयास नहीं किया है जो कि राष्ट्रमंडल के सदस्य हैं। यह विरोधाभास केवल राष्ट्रमंडल की नहीं अपितु विश्व के सभी बहुराष्ट्रीय संगठनों की नियति बन गया है। अन्तरराष्ट्रीय राजनीति की गति एक सीधी और सरल रेखा के समान नहीं है अपितु सर्पिल और वक्र है। इसी कारण कथनी और करनी की ये विसंगतियां उसकी विशिष्टता बन गयी है। राष्ट्रमंडल इसका कोई अपवाद नहीं है। लेकिन जहां तक राष्ट्रमंडल के दृष्टिकोण या नजरिये का सवाल है वह निश्चित रूप से तृतीय विश्व परक है। केवल विचार के स्तर पर ही नहीं, यथासंभव क्रिया के स्तर पर भी राष्ट्रमंडल ने स्वयं को तृतीय विश्व की आशाओं आकांक्षाओं और लक्ष्यों के निकट लाने का प्रयास किया है। इसका अन्यतम उदाहरण राष्ट्रमंडल और उसकी संस्थाओं द्वारा चलाये जा रहे अनेक विकास प्रकल्प हैं। ये विकास प्रकल्प और कार्यक्रम परिमाण में छोटे होते हुए भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इनका विस्तृत अध्ययन और समीक्षा अगले अध्याय में की गयी है।

तृतीय अध्याय

राष्ट्रमंडल विकास कार्यक्रम

तीसरा अध्याय

राष्ट्रमंडल विकास कार्यक्रम

एक कहावत है कि अंधेरे को कोसने से बेहतर है कि एक छोटा सा दीपक जला दिया जाये। उसका प्रकाश चाहे सारे विश्व को आलोकित न कर सके पर कम से कम एक सीमित स्थान पर से अंधकार को ध्वस्त कर ही सकता है। विकास के लिए सहायता के संदर्भ में राष्ट्रमंडल की दृष्टि भी कुछ इसी प्रकार की रही है। राष्ट्रमंडल ने चाहे छोटे स्तर पर ही सही, कई विकास कार्यक्रम संचालित किए हैं। ये विकास कार्यक्रम सिद्ध करते हैं कि राष्ट्रमंडल तृतीय विश्व के आर्थिक सन्दर्भों के साथ मात्र मौलिक रूप से ही नहीं जुड़ा हुआ अपितु क्रियात्मक रूप में भी उनकी विकास गतिविधियों में सहयोग दे रहा है। राष्ट्रमंडल का विकास गतिविधियों में सहकार 1950 से ही आरम्भ हो जाता है। इस वर्ष राष्ट्रमंडल देशों के विदेशमंत्रियों की एक बैठक कोलम्बो में हुई थी। इसमें विकासशील देशों की सहायता के लिए एक कार्यक्रम पर स्वीकृति हुई थी जिसे कोलम्बो योजना के नाम से जाना जाता है। कोलम्बो योजना में एशिया और प्रशान्त क्षेत्र के राष्ट्रमंडलीय देशों के लिए सहायता कार्यक्रम बनाया गया था।[1] उसके बाद से तृतीय विश्व के विकासशील देशों के आर्थिक विकास में राष्ट्रमंडल सहभाग न केवल बढ़ता गया है अपितु उसमें नये-नये आयाम भी जुड़ते चले गये हैं। 1965 में राष्ट्रमंडल सचिवालय की स्थापना के बाद से राष्ट्रमंडल की विकासात्मक आर्थिक गतिविधियों में तेजी से वृद्धि हुई है। साथ ही इनमें वैविध्य भी आया है। इस दिशा में 1971 के सिंगापुर राष्ट्रमंडल शिखर सम्मेलन

---

(1) कामन वैल्थ टुडे, राष्ट्रमंडल सचिवालय, लंदन, 1985 पृ0 23

के बाद तकनीकी सहयोग के लिए राष्ट्रमंडल कोष (C.F.T.C.) की स्थापना एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कदम था। राष्ट्रमंडल द्वारा चलायी जाने वाली अनेक विकास परियोजनाएं आज इस कोष के तत्वावधान में चलती हैं। राष्ट्रमंडल सचिवालय के अन्तर्गत ही कोष का परिचालन एक सहायक महासचिव करते हैं। कोष के अतिरिक्त राष्ट्रमंडल सचिवालय का आर्थिक मामलों का अनुभाग, निर्यात बाजार विकास अनुभाग, खाद्यान्न उत्पादन एवं ग्राम्य विकास अनुभाग और राष्ट्रमंडल विज्ञान परिषद् के तत्वावधान में भी विकास के लिए तकनीकी सहायता के अनेक कार्यक्रम चलते हैं। फिर भी प्रधानतः कोष ही राष्ट्रमंडल विकास कार्यक्रम का मुख्य संचालक है। इसकी संरचना और गतिविधियों की विस्तृत समीक्षा करना उपयुक्त होगा।

तकनीकी सहयोग के लिए राष्ट्रमंडल कोष

राष्ट्रमंडल कोष[2] की स्थापना का निर्णय राष्ट्रमंडल देशों के सिंगापुर शिखर सम्मेलन में लिया गया था। इसके अनन्तर 1971 में इसकी स्थापना की गयी। यह राष्ट्रमंडल सचिवालय के एक विभाग के रूप में ही कार्य करता है। इसका नियंत्रण एक बोर्ड द्वारा किया जाता है जिसमें सभी सदस्य देशों को प्रतिनिधित्व प्राप्त है। इसके दैनन्दिन कार्यों की देखभाल के लिए एक प्रबन्ध समिति है जिसका प्रमुख राष्ट्रमंडल महासचिव होता है। राष्ट्रमंडल कोष का एक प्रबन्ध निदेशक होता है जिसे कि सहायक महासचिव का दर्जा प्राप्त है। यह सीधे राष्ट्रमंडल महासचिव के प्रति उत्तरदायी है। कोष में दो मुख्य अनुभाग हैं, (क) साधारण तकनीकी सहायता अनुभाग (ख) शिक्षा एवं प्रशिक्षण अनुभाग

---

(2) सुविधा के लिए मैंने इसे संक्षिप्त कर दिया है। बाकी अध्याय में अब इसी नाम से इसका उल्लेख किया जायेगा।

साधारण तकनीकी सहायता कार्यक्रमों के अन्तर्गत राष्ट्रमंडल कोष सदस्य राष्ट्रों को विशेषज्ञ उपलब्ध कराता है। उदाहरण के लिए 1979 में साठ राष्ट्रमंडल देशों में तीन सौ तीस राष्ट्रमंडल विशेषज्ञ विकास का कार्यक्रमों में हाथ बंटा रहे थे।(3) शिक्षा एवं प्रशिक्षण अनुभाग विभिन्न देशों में शिक्षा तथा प्रशिक्षण के विभिन्न कार्यक्रम चलाता है जो विभिन्न क्षेत्रों में ऐसे विशेषज्ञ तैयार करते हैं जिससे स्थानीय विकास कार्यक्रमों में मानव-संसाधनों की कमी पूरी हो सके।

इसके अतिरिक्त राष्ट्रमंडल कोष का एक तकनीकी सहायता दल (टैक्नीकल असिस्टैंस ग्रुप) भी है। इस दल में अर्थशास्त्री, वकील, वित्त एवं कर विशेषज्ञ तथा सांख्यिकी विशेषज्ञ है जो विशेष परियोजनाओं के लिए अत्यल्प समय की सूचना पर कार्य करने के लिए तैयार रहते हैं। जब भी किसी सदस्य देश को इन क्षेत्रों में विशेषज्ञ सलाह अथवा सहायता की आवश्यकता होती है, राष्ट्रमंडल के विशेषज्ञ उसकी सहायता करते हैं। उदाहरण के लिए पिछले कुछ समय में राष्ट्रमंडल देशों ने अपने प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग में इन विशेषज्ञों की सहायता प्राप्त की है। कुछ देशों ने बहुराष्ट्रीय निगमों के साथ बातचीत करने में भी राष्ट्रमंडल सलाहकारों की मदद प्राप्त की है। सदस्य देशों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर राष्ट्रमंडल सचिवालय में एक सूचना बैंक भी स्थापित किया जा रहा है। यहाँ से विभिन्न विषयों पर विशेषज्ञ जानकारी सुविधा से प्राप्त हो सकेगी।

---

(3) मार्गरेट डाक्सी, "द कामनवैल्थ सैक्रेट्रिएट," ए० जे० आर० ग्रूम व पाल टेलर, "द कामनवैल्थ इन द 1980 ज़ ,हांग कांग, 1984 पृ० 32

1979 के लुसाका राष्ट्रमंडल शिखर सम्मेलन में निर्णय लिया गया था कि राष्ट्रमंडल के विकासशील सदस्य देशों के औद्योगिक विकास में मदद के लिए एक औद्योगिक सहायता एकक की स्थापना की जाये। 1980 में राष्ट्रमंडल कोष के अधीन ही औद्योगिक विकास एकक की स्थापना की गयी।[4] यह विभिन्न औद्योगिक परियोजनाओं में सदस्य देशों की मदद करता है।

राष्ट्रमंडल कोष में राष्ट्रमंडल के विभिन्न देश वित्तीय सहायता देते हैं। 1971 में इसका बजट केवल चार लाख पाउण्ड था जो 1982-83 में 180 लाख पाउण्ड हो गया। 1983-84 में राष्ट्रमंडल कोष का कुल बजट करीब 200 लाख पाउण्ड था।[5] 1985-86 के दौरान कोष का कुल व्यय 270 लाख पाउण्ड तक पहुंच जाने की संभावना है।[6] इसके बजट में अधिक अंशदान देने वाले देशों में कनाडा, ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया, नाइजीरिया, न्यूजीलैण्ड, भारत, मलेशिया और जमैका प्रमुख है। ऐसा नहीं है कि राष्ट्रमंडल कोष का बजट सदैव बढ़ता रहा है। वस्तुत: 1979-80 के दौरान इसके संसाधनों में भारी कटौती हुई थी जबकि 1978-79 में 113 लाख पाउण्ड से घटकर 1979-80 में कुल 94 लाख पाउण्ड तक आ गया था। लेकिन उसके बाद से इसके स्रोत बढ़ते ही गये हैं।

---

(4) "एक्शन फार इंडस्ट्री : द इंडस्ट्रियल डिवलपमेंट यूनिट, राष्ट्रमंडल सचिवालय, लंदन 1981

(5) को-आपरेशन फार डिवेलपमेंट, राष्ट्रमंडल सचिवालय, लंदन, 1983

(6) द कामनवैल्थ टूडे, राष्ट्रमंडल सचिवालय, लंदन 1985 पृ0 24

राष्ट्रमंडल कोष द्वारा सदस्य देशों को विभिन्न क्षेत्रों में बहुआयामी सेवायें प्रदान की जाती हैं। यह निम्नलिखित क्षेत्रों में राष्ट्रमंडल सदस्यों की सहायता करता है :

(क) सदस्यों की प्रार्थना पर उनकी आवश्यकतानुसार खास क्षेत्रों में विशेषज्ञ उपलब्ध कराना।

(ख) सदस्य राष्ट्रों के नागरिकों को अन्य देशों में प्रशिक्षण की सुविधाएं उपलब्ध कराकर स्थानीय विशेषज्ञता में वृद्धि करना।

(ग) सदस्य राष्ट्रों की अर्थव्यवस्था के महत्वपूर्ण क्षेत्रों के विकास के लिए विशेषज्ञ सलाहकारों द्वारा वित्तीय अध्ययन कराना।

(घ) सदस्य राष्ट्रों के निर्यात वृद्धि में सहायता देकर उनको विदेशी पूंजी कमाने में मदद करना।

(ङ) वैधानिक, आर्थिक, वित्तीय एवं सांख्यिकीय मामलों में सदस्य राष्ट्रों को विशेषज्ञ सलाह देना।

(च) सदस्य राष्ट्रों में नये उद्योग स्थापित करने और चालू उद्योगों में उत्पादकता बढ़ाने में सहायता करना।

(छ) खाद्यान्न उत्पादन, ग्राम्य विकास, शिक्षा, विधि निर्माण, स्वास्थ्य, विज्ञान और तकनीकी, प्रबन्ध विकास, आर्थिक एवं महिलाओं के उत्थान की योजनाओं में सदस्य राष्ट्रों परस्पर सहयोग में वृद्धि करना, और

(ज) विकासशील देशों में तकनीकि सहयोग (टैक्नीकल को-आपरेशन एमान्ग डिवेलपिंग कन्ट्रीज (T.C.D.C.) में वृद्धि करना।

ये कुछ लक्ष्य हैं जिनकी प्राप्ति के लिए राष्ट्रमंडल कोष सतत प्रयत्नशील रहता है। परन्तु अपने आप में ये अत्यन्त व्यापक और विस्तृत होने के साथ-साथ कुछ भ्रामक भी है क्योंकि किसी न किसी स्तर पर अनेक अन्तरराष्ट्रीय संगठन इनकी वकालत करते ही हैं। इसलिए इन दिशा निर्देशों की स्वीकृति मात्र से ही राष्ट्रमंडल के कृत्यों को विशिष्टता प्राप्त नहीं हो जाती। वस्तुत: ऐसा है भी नहीं क्योंकि राष्ट्रमंडल केवल इन्हें मौखिक स्वीकृति देकर ही अपने कर्तव्य की इतिश्री नहीं समझ लेता। वह सिद्धान्त तौर पर मौखिक स्वीकृति के लक्ष्य से कुछ आगे जाता है और इनकी प्राप्ति में प्रयत्नशील है यही राष्ट्रमंडलीय गतिविधियों का वैशिष्ट्य है। यही उसके क्रियाकलापों को अनूठापन प्रदान करता है। अन्यथा राष्ट्रमंडल की उपयोगिता कम से कम उसके कई सदस्यों के लिए एक ढीले-ढाले क्लब से अधिक नहीं रह जाती। उदाहरण के तौर पर राष्ट्रमंडल के छोटे सदस्य राष्ट्रों जैसे तुवालू, नौरु, किरीबैटी, सैन्ट क्रिस्टोफर-नेविस तथा एंटीगुआ व बारबुडा को लिया जाए। इनकी जनसंख्या क्रमश: आठ हजार आठ हजार, साठ हजार, तिरेपन हजार और सतत्तर हजार है।[7] अब इन देशों के लिए राष्ट्रमंडलीय सदस्यता की सार्थकता आर्थिक कार्यक्रमों के अभाव में बहुत कम रह जायेगी। इनके लिए आर्थिक कार्यक्रमों की उपादेयता बहुत अधिक है। कहने का अभिप्राय यह कि यदि अपने घोषित लक्ष्यों की दिशा में कोई अन्तरराष्ट्रीय संगठन कोई कदम नहीं उठाता तो उसकी घोषणाओं की सार्थकता में यथार्थ का कोई अंश नहीं रह जाता है। इसके लिए आवश्यक है कि यह संगठन, चाहे छोटे स्तर पर ही क्यों न हो,

---

(7) द कामनवेल्थ एट ए ग्लांस राष्ट्रमंडल सचिवालय, लंदन, 1985

अपने लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु कुछ प्रयास अवश्य करें। इस संदर्भ में राष्ट्रमंडल की आर्थिक विकास संबंधी गतिविधियां निश्चय ही उल्लेखनीय हैं। राष्ट्रमंडल कोष द्वारा चलाये जा रहे विभिन्न विकास कार्यक्रमों का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है :

(क) छोटे देशों के लिए विकास कार्यक्रम,

(ख) औद्योगिक क्षेत्र में सहयोग,

(ग) तकनीकी सहायता दल,

(घ) निर्यात सम्वर्द्धन कार्यक्रम,

(ङ) कृषि, ग्राम्य एवं मत्स्य पालन विकास,

(च) क्षेत्रीय सहयोग विकास कार्यक्रम,

(छ) मानव संसाधन विकास,

(ज) शिक्षा के क्षेत्र में सहयोग,

(झ) प्रबन्ध एवं प्रशासन के क्षेत्र में सहयोग,

(ञ) महिला एवं विकास,

(ट) स्वास्थ्य,

(ठ) वित्त एवं आर्थिक सहयोग,

(ड) विज्ञान एवं तकनीकी सहयोग, और

(ढ) संचार व दूरप्रसारण,

लघु राष्ट्रों के विकास में सहायता

राष्ट्रमंडल देशों में विश्व की एक चौथाई जनता निवास करती है। इसके 49 सदस्य राष्ट्रों में केवल चार- ब्रिटेन, कनाडा, आस्ट्रेलिया व न्यूजीलैण्ड विकसित देशों की श्रेणी में आते हैं। बचे हुए 45 सदस्य विकासशील राष्ट्रों की कोटि में है। इनमें भी विभिन्न श्रेणियां हैं। इनमें से कुछ जैसे कि भारत और नाइजीरिया आदि अपेक्षाकृत समृद्ध विकासशील देश हैं। राष्ट्रमंडल के 25 सदस्य लघु द्वीपीय राष्ट्र हैं; ग्यारह सदस्य संयुक्त राष्ट्र द्वारा अल्पतम विकसित देश घोषित किये गये हैं, अन्य दस अत्यल्प आय वाले देशों की श्रेणी में है तथा सात देश ऐसे हैं जोकि भूवेष्टित हैं।[8] ये छोटे और अल्पविकसित राष्ट्र अनेक कठिनाइयों का सामना करते हैं। इनमें से लघु द्वीपीय राष्ट्रों की आर्थिक समस्याएं असंख्य है। इन्हें मानवीय और प्राकृतिक संसाधनों के अभाव, भौगोलिक एकान्तिकता और असन्तुलित विकास की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। राष्ट्रीय सुरक्षा भी एक महत्वपूर्ण समस्या के रूप में इनके समक्ष बहुधा आ खड़ी होती है। इन देशों के लिए राष्ट्रमंडल विकास कार्यक्रम वाकई बहुत महत्वपूर्ण हैं। 1979 के लुसाका राष्ट्रमंडल शिखर सम्मेलन में इन देशों की समस्याओं के अध्ययन के लिए एक समिति बनायी थी। इस समिति की रपट के आधार पर और वैसे भी राष्ट्रमंडल कोष इन देशों में अनेक परियोजनाएं और कार्यक्रम चलाता है। सचिवालय का आर्थिक विषयक अनुभाग इन देशों को अन्तरराष्ट्रीय

---

(8) को आपरेशन इन इकनामिक अफेयर्स, राष्ट्रमंडल सचिवालय, लंदन, 1985

घटनाक्रम की सूचना देने का कार्य करता है क्योंकि इनमें से अधिकांश राष्ट्र विभिन्न अन्तरराष्ट्रीय मंचों पर अपने प्रतिनिधि नहीं भेज पाते। 1980 से सचिवालय उन सभी देशों के विषय में वार्षिक आंकड़े प्रकाशित करता है जिनकी जनसंख्या पचास लाख से कम है।(9) इन देशों को स्वालंबी बनाने की दिशा में इनमें परस्पर सहयोग में वृद्धि हेतु राष्ट्रमंडल कोष क्षेत्रीय सहयोग में वृद्धि पर बल देता है। उदाहरण के तौर पर पूर्वी कैरेबियन देशों के संगठन(आर्गनाइजेशन आफ इस्टर्न कैरीबियन स्टेट्स) में कुछ पद राष्ट्रमंडल कोष द्वारा दी गयी सहायता से चलते हैं। यह संगठन सात लघु राष्ट्रमंडल देशों को जोड़ता है। इस संगठन की सहायतार्थ राष्ट्रमंडल के दो विधि विशेषज्ञ भी कार्य कर रहे हैं। इसी तरह से दक्षिण प्रशान्त आयोग को भी राष्ट्रमंडल कोष से सहायता मिलती है।(10) इन देशों में मानवीय संसाधनों के अभाव को पूरा करने के लिए राष्ट्रमंडल कोष विभिन्न देशों में इन्हीं के नागरिकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करता है। विभिन्न लघु द्वीपीय राष्ट्रों के नागरिकों के प्रशिक्षण के लिए क्षेत्रीय स्तर पर भी प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाती है। कोष के साधारण तकनीकी सहायता कार्यक्रम के अन्तर्गत इन देशों की आवश्यकताओं को प्राथमिकता दी जाती है। विभिन्न देशों में दीर्घकाल तक नियुक्त किये गए राष्ट्रमंडल विशेषज्ञों में से लगभग 65 प्रतिशत इन्हीं देशों में लगे हुए हैं।(10) भारत, आस्ट्रेलिया, बांग्ला देश, जमैका और ब्रिटेन आदि देशों से विशेषज्ञ इन देशों में विकास कार्यक्रमों में मदद

---

(9) वही

(10) कामनवेल्थ स्किल्स फार कामनवेल्थ नीड्स, राष्ट्रमंडल सचिवालय लंदन, 1985 पृ0 24

(11) वही पृ0 6

दे रहे हैं। राष्ट्रमंडल के औद्योगिक विकास स्कन्ध द्वारा चलाये जा रहे कार्यक्रमों में भी इन्हीं देशों को प्राथमिकता प्राप्त है। 1983 से 1985 तक औद्योगिक विकास स्कन्ध के कुल संसाधनों का 80 प्रतिशत भाग इन्हीं देशों में लगा। सहायता प्राप्त देशों में डोमिनिका, गुयाना, जाम्बिया, उगांडा, स्वाजीलैण्ड, फिजी, टोंगा, तुवालू और वानुआतू प्रमुख थे।[12] औद्योगिक सहायता स्कन्ध सामान्यतः छोटे उद्यमियों को सहायता देने के कार्यक्रम इन देशों में चलाता है। जो स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप होते हैं। इन देशों के निर्यात में सम्वर्द्धन के लिए भी राष्ट्रमंडल सचिवालय का निर्यात बाजार विकास अनुभाग प्रयत्नशील रहता है। इसके लिए संभावित बाजारों का सर्वेक्षण और इन देशों की वस्तुओं के लिए सौदेबाजी का कार्य अनुभाग द्वारा किया जाता है। उल्लेखनीय है कि 1981 से 1984 के बीच बेलिजे, बोत्सवाना, गाम्बिया, लैसोथो और स्वाजीलैण्ड आदि देशों के निर्यात में इन्हीं प्रयत्नों के फलस्वरूप तीन गुनी वृद्धि हुई।

इन देशों की समस्याओं के परिमाण को देखते हुए राष्ट्रमंडल सहायता अत्यन्त अल्प है। और बहुधा राष्ट्रमंडल के अन्य विकासशील राष्ट्रों के हितों और इन लघु राष्ट्रों के आर्थिक हितों में टकराव की स्थिति आती है। जिसमें अन्तत्वोगत्वा ये राष्ट्र ही नुकसान में रहते हैं। राष्ट्रमंडल प्रयास इन देशों के विकास के लिए अपर्याप्त है। लेकिन उस दिशा में संभावना की दृष्टि से विकास के लिए सहयोग में वृद्धि की अनन्त संभावनाएं है। राष्ट्रमंडल यदि इस दिशा में और प्रयास कर तो वह और सार्थक भूमिका का निर्वाह कर सकता है।

---

(12) वही पृ0 7

औद्योगिक क्षेत्र में सहयोग

औद्योगिक विकास को वर्तमान युग में प्रगति का मूलमंत्र माना जाता है। नयी अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की स्थापना के संदर्भ में भी त्वरित औद्योगिक विकास तृतीय विश्व की एक प्रमुख मांग है। राष्ट्रमंडल कोष सदस्य राष्ट्रों के, विशेषकर लघु द्वीपीय राष्ट्रों के औद्योगिक विकास में सहायता करता है। कोष का औद्योगिक विकास एकक इस दिशा में अग्रणी संस्था है। एकक की स्थापना 1980 में राष्ट्रमंडल देशों के उद्योगमंत्रियों की बैठक द्वारा की गयी सिफारिश के अनुसार की गयी थी।(13) एकक विभिन्न राष्ट्रों में नयी औद्योगिक इकाइयां शुरु करने और चालू इकाइयों के नवीनीकरण तथा उनकी उत्पादकता बढ़ाने में सहयोग करता है। एकक सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्रों में उद्योगों को मदद देता है। इसका सबसे महत्वपूर्ण कार्य उचित तकनीकी का विकास और उसका हस्तांतरण है। विभिन्न देशों में हो रहे तकनीकी अनुसंधानों की जानकारी भी अन्य देशों को पहुंचाने का कार्य इसके द्वारा किया जाता है। जटिल और विकसित तकनीकी को स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप ढाल कर उसके प्रयोग में औद्योगिक विकास एकक ने सराहनीय कार्य किया है। विभिन्न उद्योगों में प्रशिक्षण देने के लिए कई देशों में स्थापित प्रशिक्षण संस्थानों का उपयोग किया जाता है। यहां प्रशिक्षित व्यक्ति अपने देशों में उद्योगों की स्थापना में मदद देते हैं।

---

(13) एक्शन फार इंडस्ट्रीज : द इंडस्ट्रियल डिवेलपमेंट यूनिट राष्ट्रमंडल सचिवालय, लंदन, 1981

राष्ट्रमंडल के कई सदस्य कृषि प्रधान देश है अत: कृषि आधारित उद्योगों का उनके लिए अन्यतम महत्व है। इस दिशा में औद्योगिक विकास एकक के प्रयास प्रशंसनीय है। एकक के 75 प्रतिशत कार्यक्रम कृषि उद्योगों से ही संबंधित हैं।[14] इनमें कृषि विकास से संबंधित कार्य जैसे उर्वरक, बीज, कीटनाशक, कृषि के औजार आदि की आपूर्ति, कृषि पदार्थों की "प्रोसेसिंग", पशुओं की उचित देखभाल, वन्य विकास कार्यक्रम, मत्स्य पालन पर आधारित उद्योग आदि के क्षेत्रों में तकनीकी विशेषज्ञता उपलब्ध कराना शामिल है।

औद्योगिक विकास एकक स्वास्थ्य पर आधारित उद्योगों के विकास में भी सहायता कार्यक्रम चलाता है। उदाहरण के तौर पर मलेशिया तथा गुयाना सहित कई देशों में औषध निर्माण कारखाने लगाने में इसने सहायता दी है।

इस वर्ष से राष्ट्रमंडल कोष राष्ट्रमंडल औद्योगिक प्रशिक्षण एवं अनुभव कार्यक्रम (कामनवेल्थ इंडस्ट्रियल ट्रेनिंग एंड एक्सपीरियंस प्रोग्राम) शुरू करने जा रहा है।[15] इसके तहत विकासशील देशों के उद्योगकर्मियों को अनुभव व प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए अन्य देशों के औद्योगिक प्रतिष्ठानों में भेजा जाएगा। यह कार्यक्रम मुख्यत: आभियांत्रिकी आधारित निर्माण उद्योगों के लिए ही होगा।

औद्योगिक क्षेत्र में राष्ट्रमंडल द्वारा चलाये जा रहे कार्यक्रमों से न केवल लघु द्वीपीय राष्ट्रमंडल देशों का लाभ हुआ है अपितु भारत जैसे देशों को भी इससे लाभ हुआ है। जैसे कि राष्ट्रमंडल कोष ने भारत को माइक्रो कंप्यूटर के क्षेत्र में मदद दी है।

---

(14) कामनवेल्थ स्किल्स फार कामनवेल्थ नीड्स, राष्ट्रमंडल सचिवालय लंदन, 1985, पृ0 10

(15) वही पृ0 12

तकनीकी सहायता दल

राष्ट्रमंडल कोष का तकनीकी सहायता दल सदस्य देशों को चुने हुए उच्च प्राथमिकताओं वाले क्षेत्रों में सलाहकार सेवाएं प्रदान करता है। इनमें पैट्रोल व अन्य प्राकृतिक संसाधनों का खनन और सामुद्रिक सीमा निर्धारण और मत्स्य पालन आदि के संबंध में समझौतों के बारे में सलाह देना शामिल है। इसी तरह ऋणग्रस्त विकासशील देशों को ऋण चुकाने में सहायता करने के लिए एक नयी योजना का श्रीगणेश 1984 में तकनीकी सहायता दल के तत्वावधान में हुआ है। "कामनवेल्थ सेक्रेट्रिएट डेट रिकार्डिंग एंड मैनेजमेंट सिस्टम"(16) नामक इस कार्यक्रम के अन्तर्गत कंप्यूटरों का प्रयोग करके कम लागत पर उन्हें विदेशी ऋण भुगतान संबंधी सेवाएं प्रदान की जाती है। ऋण प्रबंधन में प्रशिक्षण देने का कार्य भी इसके अन्तर्गत किया जा रहा है।

ऊर्जा आधुनिक युग की एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है और पैट्रोल इसका एक अन्यतम स्रोत है। तकनीकी सहायता दल विभिन्न देशों को पैट्रोल खनन के वित्तीय और कानूनी पहलुओं पर महत्वपूर्ण सलाह देता है। 1983 से अब तक इस क्षेत्र में घाना, मोजाम्बिक, सिशेल्स, सियरा लिओन, तंजानिया गाम्बिया, युगांडा, बारबाडोस, गुयाना आदि देश इससे लाभान्वित हो चुके हैं।(17) पैट्रोल के अलावा अन्य खनिजों के खनन और विकास में भी तकनीकी सहायता दल सदस्य देशों की मदद करता है। इनमें सोना, कोयला, बॉक्साइट एवं एस्बेस्टस आदि शामिल हैं। अफ्रीका, प्रशान्त सागरीय और कैरीबीय देशों में इस तरह के करीब 15 प्रकल्प तकनीकी सहायता दल चला रहा है।

---

(16) वही पृ0 14

(17) वही पृ0 13

समुद्र तेजी से मानव सभ्यता के लिए बहुत अधिक महत्वपूर्ण क्षेत्र बनता जा रहा है। इसका कारण समुद्र तल में पाये जाने वाले खनिज, पैट्रोल और सामुद्रिक खाद्य पदार्थ हैं। इसलिए प्रत्येक देश के लिए समुद्रीय सीमाएं बहुत महत्व की हो गयी है। राष्ट्रमंडल के कई छोटे देशों के पास अपनी सामुद्रिक सीमाएं निर्धारित करने के लिए विशेषज्ञता उपलब्ध नहीं है। तकनीकी सहायता दल इस क्षेत्र में उनकी सहायता करता है। 1983 से 1985 की अवधि में उसने एंटीगुआ व बारबुडा, डोमिनिका, मोंटसेराट, सेंट किट्स, नेविस व सेंट लूसिया, सोलोमन द्वीप, वानुआतु आदि देशों को इस सन्दर्भ में महत्वपूर्ण सलाहकार सेवाएं उपलब्ध करायीं।

इसी तरह से दूर संचार प्रकल्पों, निर्यात के लिए जहाजरानी समझौतों, हवाई यातायात समझौतों, नये बैंकों की स्थापना, और सरकारों की नीति निर्माण में सांख्यिकीय सुविधा उपलब्ध कराने जैसे क्षेत्रों में भी तकनीकी सहायता दल विशेषज्ञ उपलब्ध कराता है। लघु द्वीपीय राष्ट्रमंडल देशों की दृष्टि से दल के क्रिया कलाप अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि आर्थिक और मानवीय संसाधनों की सीमितता के कारण प्रत्येक क्षेत्र में विशेषज्ञता प्राप्त करना उनके लिए स्वप्न जैसा है अतः कुछ क्षेत्रों में तकनीकी सहायता दल उनके विकास कार्यों का एक आधारभूत आश्रय बन गया है।

निर्यात सम्वर्द्धन कार्यक्रम

विकासशील देशों के लिए विदेशी मुद्रा की उपलब्धता उनके विकास कार्यक्रमों की एक आवश्यकता बन गयी है क्योंकि अपने विकास में उन्हें विदेशी पूंजी, साजो सामान, तकनीकी और विशेषज्ञता की जरूरत पड़ती ही है। विदेशी मुद्रा उन्हें कैसे प्राप्त हो? इसका सबसे आसान और स्वावलंबी मार्ग

अपने माल को विश्व बाजार में बेचना है। लेकिन यह बात जितनी सरल दिखाई देती है वास्तव में उतनी है नहीं क्योंकि बाजार में उन्हें कड़ी प्रतियोगिता का सामना तो करना ही पड़ता है, सामान्यतया विकासशील देशों के पास संसाधनों और जानकारी का अभाव रहता है जिससे उन्हें बाजारों की स्थिति का ही अनुमान नहीं हो पाता। यह बात छोटे-छोटे विकासशील देशों पर और ज्यादा लागू होती है। उनके साधन अत्यन्त सीमित होने से बहुधा वे उन बाजारों तक पहुंच ही नहीं पाते जहां उनकी वस्तुओं के बेहतर दाम उन्हें मिल सकें। राष्ट्रकुल कोष इस दिशा में एक महत्त सेवा कर रहा है। कोष अपने निर्यात सम्वर्द्धन कार्यक्रम के अन्तर्गत जरूरतमंद देशों को एक ऐसा आर्थिक ढांचा खड़ा करने में मदद करता है जो निर्यात योग्य वस्तुओं का उत्पादन कर सके। साथ ही इन वस्तुओं के निर्यात के लिए भी वह प्रयास करता है। इसके लिए अन्तरराष्ट्रीय बाजारों का सर्वेक्षण किया जाता है। कोष क्रेता-विक्रेता बैठक और सम्पर्क कार्यक्रमों का आयोजन भी करता है। इसके अन्तर्गत निजी और सार्वजनिक दोनों की तरह के उद्यमों को सहायता दी जाती है

कोष ने एक समन्वित बाजार कार्यक्रम भी आरम्भ किया है इसमें उत्पादन से लेकर भंडारण और बिक्री तक विशेषज्ञ सलाह उपलब्ध करायी जाती है। न केवल विकसित देशों के बाजारों के सर्वे का कार्य कोष अपने हाथ में लेता है अपितु विकासशील देशों के मध्य व्यापार बढ़ाने के प्रयासों में भी यह सहायता करता है। इससे इन देशों को कम लागत पर ही स्थानीय जरूरतों के मुताबिक उपकरण और वस्तुएं उपलब्ध हो जाती हैं। उदाहरण के तौर पर कोष द्वारा किए गये बाजार सर्वेक्षण के बाद भारत ने पांच अफ्रीकी देशों को कृषि उपकरणों का निर्यात किया।(18)

---

(18) वही पृ0 16

क्रेता-विक्रेता बैठक और सम्पर्क कार्यक्रमों से बाजारों के बारे में आवश्यक जानकारी उपलब्ध हो पाती हैं। उदाहरण के लिए अभी तक भारत के लिए लंदन, न्यूयार्क, शिकागो, लासएंजिलिस,कोलोन, तोक्यो, अटलांटा, सिडनी, स्टाकहोम, ओस्लो और कुआलालंपुर में क्रेता-विक्रेता बैठकें कोष के तत्वावधान में आयोजित की गयी हैं। श्रीलंका के लिए, न्यूयार्क, कोपेनहेगन, तोक्यो, सिडनी और मेलबोर्न में, केन्या के लिए न्यूयार्क, कोलोन, लंदन और तोक्यो में, जमैका के लिए टोरन्टो में, तथा बांगला देश के लिए न्यूयार्क, दुबई,लासएंजिलिस, ह्यूस्टन और कुआलालंपुर में ऐसी बैठकें आयोजित की गयी हैं।[19] ऐसी ही अनेक बैठकें और कई देशों के लिए भी आयोजित की गयी हैं। इनसे इन देशों को अपने निर्यात बढ़ाने में बहुत सुविधा हुई है। निर्यात सम्वर्द्धन के साथ ही व्यापारिक नीतियों के निर्माण में भी राष्ट्रमंडल कोष विभिन्न सदस्यों को विशेषज्ञ सलाह उपलब्ध कराता है।

<u>कृषि एवं ग्राम्य तथा मत्स्य पालन विकास</u>

पिछले दशक के मध्य में विश्व में गंभीर खाद्यान्न संकट उत्पन्न हुआ था। इसको देखते हुए राष्ट्रमंडल ने सचिवालय के तहत 1975 में खाद्यान्न उत्पादन और ग्राम्य विकास अनुभाग की स्थापना की थी।[20] यह अनुभाग खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि और ग्राम्य जीवन-स्तर में विकास कार्यक्रमों में विभिन्न सदस्यों की सहायता करता है। इसके काम की समीक्षा और दिशा निर्देश देने के लिए राष्ट्रमंडल के कृषिमंत्रियों की नियमित बैठकें होती हैं।

---

(19) वही पृ0 16-17

(20) "फूड प्रोडक्शन एंड रूरल डिवलपमेंट", राष्ट्रमंडल सचिवालय लंदन, 1986

अनुभाग के कार्यक्रमों में से अधिकतर क्षेत्रीय स्तर पर चलाये जा रहे हैं। इनका लक्ष्य नयी कृषि तकनीकों, प्रशिक्षण एवं अनुभवों के आदान-प्रदान के द्वारा सदस्य राष्ट्रों को कृषि उत्पादकता में वृद्धि लाने में सक्षम करना है। अनुभाग भूमि के उचित उपयोग, भू और पर्यावरण संरक्षण, ग्रामीण संस्थाओं के विकास, ग्राम्य ऋण, छोटे काश्तकारों के लिए पशुधन विकास, मत्स्य पालन और सूचनाओं के आदान प्रदान के क्षेत्र में विभिन्न प्रकल्प चलाता है।[21] इसके लिए विभिन्न अन्तरराष्ट्रीय संस्थाओं जैसे विश्व खाद्य एवं कृषि संगठन, विश्व बैंक आदि की सहायता से प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं। आवश्यकतानुसार विभिन्न देशों में कृषि विशेषज्ञ भी नियुक्त किये जाते हैं।

खाद्यान्नों के विकल्प के रूप में ग्रामीण स्तर पर मत्स्य पालन के विकास पर राष्ट्रमंडल कोष अनेक कार्यक्रम चला रहा है। इसके लिए 1985 में सियरा लियोन में एक कार्यशाला आयोजित की गयी थी। जिसमें मत्स्य उद्योग के विकास के विभिन्न पहलुओं पर विचार-विमर्श किया गया था। इस कार्यशाला में इसके विकास के लिए एक दस सूत्री कार्यक्रम भी तय हुआ था।[22] अफ्रीका में चल रहे भयंकर अकाल को लेकर राष्ट्रमंडल ने एक एक्शन दल बनाया था। इसने अपनी रपट में वे उपाय सुझाए जिनसे कि राष्ट्रमंडल भयंकर सूखे का सामना करने में अफ्रीका की मदद कर सके। राष्ट्रमंडल कोष ने इन क्षेत्रों में सहायता के लिए अतिरिक्त धन की व्यवस्था की है।

---

(21) वही

(22) <u>कामनवैल्थ स्किल्स फार कामनवैल्थ नीड्स</u>, राष्ट्रमंडल सचिवालय लंदन, 1985 पृ0 23

क्षेत्रीय सहयोग विकास कार्यक्रम

विकासशील देशों में सांस्कृतिक आत्म निर्भरता की प्राप्ति के लिए क्षेत्रीय सहयोग में वृद्धि परमावश्यक है। वस्तुतः विकासशील देशों के मध्य परस्पर सहयोग वृद्धि से ही उनका तीव्र विकास संभव है। ब्रांट आयोग की रपट में भी विकासशील देशों के मध्य परस्पर सहयोग अर्थात् दक्षिण-दक्षिण सहयोग में वृद्धि की आवश्यकता पर बल दिया गया है। राष्ट्रमंडल के छोटे और भौगोलिक रूप से एकान्त्रिक देशों के संदर्भ में यह बात और भी खरी उतरती है। राष्ट्रमंडल कोष यथासंभव क्षेत्रीय सहयोग संगठनों की स्थापना और फिर उन्हें जारी रखने में अपने सदस्यों को सहायता प्रदान करता है। क्षेत्रीय स्तर पर प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित कर विशेषज्ञता की प्राप्ति में भी राष्ट्रमंडल कोष मदद देता है। राष्ट्रमंडल देशों के मध्य अनेक क्षेत्रीय सहयोग संगठन काम कर रहे हैं। जैसे कि सात कैरीबीय देशों का संगठन "आर्गनाइजेशन आफ इस्टर्न कैरीबियन स्टेट्स"। इसके सचिवालय में छह पद राष्ट्रमंडल कोष की सहायता से संचालित हैं। इसके अलावा कोष ने दो विधि विशेषज्ञ भी इसे उपलब्ध कराये हैं। "साउथ पैसिफिक ब्यूरो फार इकनामिक को-आपरेशन" की पैसिफिक रीजनल एडवाइजरी सर्विस" के प्रथम निदेशक के पद के लिए राष्ट्रमंडल कोष ने सहायता दी थी। "साउथ पैसिफिक कमीशन," "साउथ पैसिफिक फोरम एवं फिशरीज़ एजेंसी" और "एशिया पैसिफिक इंस्टीट्यूट फार ब्राडकास्टिंग डिवेलपमेंट" जैसी संस्थाओं को भी विशेषज्ञ और वित्तीय दोनों तरह की सहायता दी गयी है। इसी तरह से नवगठित "एशिया पैसिफिक ग्रुप आन मेरीटाइम इश्यूज" को भी सहायता दी गयी है, "द सेक्रेट्रिएट आफ कैरीबियन कम्यूनिटी" को विशेषज्ञ उपलब्ध कराये गये हैं। दक्षिण अफ्रीकी राष्ट्रों के क्षेत्रीय सहयोग संगठन, "सदर्न अफ्रीकन डिवेलपमेंट को-आर्डिनेशन कान्फ्रेंस" को औद्योगिक विकास एकक द्वारा सहायता दी जाती है।

राष्ट्रमंडल कोष द्वारा इन क्षेत्रीय सहयोग संगठनों को दी जाने वाली सहायता राशि दस लाख पाउण्ड प्रति वर्ष से ऊपर है । इनमें करीब 45 राष्ट्रमंडल विशेषज्ञ कार्यरत हैं ।[23]

मानव संसाधन विकास

मानवीय संसाधनों के विकास के बिना विकास का कोई भी लक्ष्य पूरा नहीं हो सकता । विकासशील देशों के पास जनाधिक्य तो है परन्तु कुशल मजदूरों, विशेषज्ञों और तकनीकि प्रवण व्यक्तियों का अभाव है । मानव संसाधनों के विकास के बिना प्राकृतिक संसाधनों का विकास भी असंभव है । इसी को ध्यान में रखकर 1983 से राष्ट्रमंडल सचिवालय जरुरतमंद देशों में मानव-संसाधनों के विकास पर अधिक बल दे रहा है । इसके अन्तर्गत मानव संसाधन विकास समूह (ह्यूमन रिसोर्स डिवेलपमेंट ग्रुप) द्वारा अनेक कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं । इनमें दीर्घ और अल्प कालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम, रोजगार विकास कार्यक्रम, छात्रवृत्तियों की व्यवस्था, प्रशिक्षण निर्देशिकाएं प्रकाशित करना जिनमें विभिन्न राष्ट्रमंडल देशों के तकनीकी और गैर तकनीकी प्रशिक्षण कार्यक्रमों का ब्यौरा दिया हुआ है और विभिन्न विषयों पर क्षेत्रीय कार्यशालाएं आयोजित करना शामिल है ।

1972 से अब तक राष्ट्रमंडल द्वारा आयोजित प्रशिक्षण कार्यक्रमों में करीब 15,000 व्यक्ति प्रशिक्षण प्राप्त कर चुके हैं ।[24] राष्ट्रमंडल कोष द्वारा 31 देशों के विशेषज्ञ अभी तक 54 देशों में अपनी सेवाएं प्रदान कर चुके हैं । 1972 में राष्ट्रमंडल कोष द्वारा केवल 50 दीर्घकालीन विशेषज्ञ

---

(23) वही पृ0 24

(24) वही पृ0 30

उपलब्ध कराए गये थे जिनकी संख्या 1979 में 300 तक पहुंच गयी और आजकल 224 दीर्घकालीन राष्ट्रमंडल विशेषज्ञ विभिन्न देशों में भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में कार्यरत हैं।[25] इसमें सर्वाधिक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि इन विशेषज्ञों में विकासशील देशों के नागरिकों की संख्या में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है जो इन देशों में मानव संसाधनों के विकास का द्योतक है। 1980 तक दीर्घकाल के लिए उपलब्ध कराये राष्ट्रमंडल विशेषज्ञों में से अधिकांश विकसित देशों से थे परन्तु 1985 में इनमें विकासशील देशों के नागरिकों की संख्या 69 प्रतिशत हो गयी।[26] जो कि निश्चय ही एक सराहनीय उपलब्धि है।

शिक्षा क्षेत्र में सहयोग

शिक्षा क्षेत्र में राष्ट्रमंडल के सहयोग का इतिहास बहुत पुराना है। राष्ट्रमंडल देशों की शिक्षा व्यवस्थाओं में काफी कुछ एकरूपता विद्यमान है जिसके कारण इस क्षेत्र में सहयोग की अनन्त संभावनाएं हैं। हर तीन वर्ष के बाद राष्ट्रमंडल देशों के शिक्षा मंत्रियों की बैठक आयोजित होती है। शिक्षा क्षेत्र में परस्पर सहयोग और इसमें राष्ट्रमंडल सचिवालय के कार्यों का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया जाता है। विभिन्न राष्ट्रमंडल देशों के विद्यार्थियों को श्रेष्ठ संस्थानों में उच्च शिक्षा के अवसर देने के लिए राष्ट्रमंडल एक वृहत् छात्रवृत्ति कार्यक्रम चलाता है। इसके तहत विभिन्न देश अनेक छात्रवृत्तियां प्रदान करते हैं। ब्रिटेन आठ सौ, विद्यार्थियों को, कनाडा पांच सौ विद्यार्थियों को, आस्ट्रेलिया एक सौ छियासठ विद्यार्थियों को तथा भारत पचहत्तर विद्यार्थियों को इस कार्यक्रम के अन्तर्गत छात्रवृत्तियां देता है।[27]

---

(25) वही पृ0 29

(26) वही पृ0 29

(27) द कामनवेल्थ टुडे, राष्ट्रमंडल सचिवालय लंदन, 1985 पृ0-29

इसके अतिरिक्त अन्य देश भी अनेक छात्रवृत्तियां देते हैं। 1985-86 के दौरान कुल 1700 छात्रवृत्तियां देने की योजना है।[28] इसके अतिरिक्त करीब 1500 प्रशिक्षार्थियों और विद्यार्थियों के प्रशिक्षण और शिक्षा की व्यवस्था राष्ट्रमंडल कोष द्वारा की जाती है। संगठन के स्तर पर राष्ट्रमंडल विश्वविद्यालयों की एसोसिएशन विभिन्न देशों के 280 से ऊपर संस्थानों में सम्पर्क का कार्य करती है। एसोसिएशन की कांग्रेस का हर पांच वर्ष में एक सम्मेलन आयोजित होता है। इसी तरह की कई संस्थाएं क्षेत्रीय स्तर पर भी सक्रिय हैं।

प्रबन्ध एवं प्रशासन के क्षेत्र में सहयोग

विज्ञान व तकनीकी में विकास के साथ-साथ कार्यों का सूक्ष्म विभाजन हुआ है जिससे आर्थिक और प्रशासनिक व्यवस्थाएं जटिलतर होती गयी हैं। आज साधारण शिक्षा और प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्ति बहुत उपयुक्त नहीं रह गया है प्रशासन और प्रबन्ध के क्षेत्र में नयी-नयी तकनीकें विकसित हुई हैं। औद्योगिक क्रान्ति के बाद आये इस परिवर्तन को कुछ चिन्तकों ने "प्रबन्धीय क्रान्ति" कहकर पुकारा है। बहरहाल इसे क्रान्ति कहा जाए या नहीं इस पर विवाद हो सकता है तथापि इतना सभी स्वीकार करते हैं कि वर्तमान युग में कुशल प्रशासन और निपुण प्रबन्ध अत्यन्त आवश्यक हैं। विकासशील देशों में इन प्रवीणताओं का अभाव रहता है क्योंकि इन क्षेत्रों उनके पास विशिष्ट प्रशिक्षण सुविधाओं की कमी है।

---

(28) वही पृ० 29

राष्ट्रमंडल के विकासशील सदस्यों की सहायता हेतु राष्ट्रमंडल कोष व अन्य राष्ट्रमंडलीय संस्थाएं इस क्षेत्र में कार्यरत हैं। सचिवालय के तत्वावधान में राष्ट्रमंडल का प्रबन्ध विकास कार्यक्रम चलता है। इसके अन्तर्गत विभिन्न देशों के नागरिकों को प्रबन्ध संस्थानों में प्रशिक्षण दिया जाता है। उदाहरण के लिए कैन्या का एक निवासी प्रति वर्ष दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रबन्ध संस्थान में प्रशिक्षण प्राप्त करता है। इसी तरह जहां आवश्यकता होती है वहां राष्ट्रमंडल विशेषज्ञ नियुक्त किये जाते हैं। गुयाना, सियरा लिओन, जांबिया, मौन्टेसराट, उंगाडा आदि देशों में राष्ट्रमंडल कोष के विशेषज्ञ स्थानीय लोगों की मदद कर रहे हैं।(29) राष्ट्रमंडल कोष प्रबन्ध और प्रशासन के क्षेत्र में वृत्तियां भी प्रदान करता है।

महिला एवं विकास

संयुक्त राष्ट्र संघ ने 1976-1985 के दशक को महिला दशक घोषित किया था। इसका उद्देश्य विश्व भर में महिलाओं की स्थिति के प्रति जागरुकता उत्पन्न करना था। परन्तु 1980 में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा दिये गये आंकड़ों के अनुसार हालांकि विश्व जनसंख्या में महिलाओं का भाग पचास प्रतिशत है तथापि विश्व के काम का दो तिहाई भाग वे ही पूरा करती हैं। यही नहीं, विश्व की कुल आय का केवल दसवां भाग उन्हें मिलता है और विश्व की सम्पत्ति के सौवें भाग से भी कम पर उनका स्वामित्व है।(30) विकासशील देशों में तो स्थिति और भी खराब है। गरीबी का बोझ सीधे महिलाओं पर ही पड़ता है।

(29) कामनवेल्थ स्किल्स फार कामनवेल्थ नीड्स, राष्ट्रमंडल सचिवालय लंदन, 1985 पृ0 34

(30) हैल्पिंग हाफ द कामनवेल्थ : वुमैन एंड डिवेलपमेंट, राष्ट्रमंडल सचिवालय, लंदन, 1981

किंग्स्टन राष्ट्रमंडल शिखर सम्मेलन के बाद से प्रत्येक शिखर सम्मेलन में इस बात पर बल दिया गया कि अपने देशों की "राजनीतिक आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधियों में महिलाओं को समानता के स्तर पर भाग लेना चाहिए।" इसी तरह 1977 के लंदन राष्ट्रमंडल शिखर सम्मेलन के घोषणा-पत्र में कहा गया कि "जब तक महिलाएं विकास प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका नहीं निभाती और उसके लाभों को प्राप्त नहीं करती, सामाजिक एवं आर्थिक विकास के लक्ष्यों को पूरी तरह प्राप्त नहीं किया जा सकता।"(31) इसी तरह के उद्गार बाद के राष्ट्रमंडल शिखर सम्मेलनों व अन्य बैठकों में प्रकट किये गए। 1980 में राष्ट्रमंडल सचिवालय के अधीन "महिला एवं विकास एकक" की स्थापना की गयी। इसका कार्य महिलाओं की विकास प्रक्रिया में समुचित योगदान को सुनिश्चित करना है। यह एकक महिला शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार आदि के लिए विशेष कार्यक्रम चलाता है। जुलाई 1985 में राष्ट्रमंडल महिला सम्मेलन का आयोजन नैरोबी में आयोजित हुआ। इसमें राष्ट्रमंडल के देशों में महिलाओं की दशा सुधारने के प्रयासों पर विचार विमर्श हुआ। इसमें महिलाओं की स्थिति के बारे में एक नीति वक्तव्य तैयार किया जिसे बाद में नसाऊ राष्ट्रमंडल शिखर सम्मेलन ने भी स्वीकृति दी। शिखर सम्मेलन में इस नीति के कार्यान्वयन के लिए एक एक्शन कार्यक्रम तैयार करने का निर्देश भी राष्ट्रमंडल सचिवालय को दिया गया।(32) राष्ट्रमंडल सचिवालय अन्य अन्तरराष्ट्रीय संस्थाओं जैसे विश्व स्वास्थ्य संगठन

---

(31) वही

(32) नसाऊ कम्युनिके, राष्ट्रमंडल सचिवालय, लंदन, 1985 पृ० 29

और संयुक्त राष्ट्र बाल आपात सहायता कोष के साथ मिलकर महिलाओं के स्वास्थ्य के लिए विशेष कार्यक्रम चलाता है। इसी तरह उन्हें स्वावलंबी बनाने के लिए सचिवालय अनेक तरह के प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करता है।

स्वास्थ्य

विकास का एक अति महत्वपूर्ण लक्ष्य नागरिकों के जीवन स्तर में वृद्धि है। सामान्य स्वास्थ्य जीवन स्तर का मापदण्ड है। विकासशील देशों में गरीबी और भुखमरी एक समस्या है तो कुपोषण व अन्य बीमारियाँ उसके लक्षण। स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी राष्ट्रमंडल परस्पर सहयोग करता है। हर वर्ष राष्ट्रमंडल के स्वास्थ्य मंत्रियों की एक बैठक होती है जिसमें राष्ट्रमंडल के स्वास्थ्य कार्यक्रमों की समीक्षा होती है। राष्ट्रमंडल सचिवालय के अन्तर्गत एक आयुर्विज्ञान कार्यक्रम चलता है। इसके तहत स्वास्थ्य आयोजना, स्वास्थ्य सेवाओं की लागत और प्रबन्ध, प्राचीन स्वास्थ्य प्रणालियों सहित स्वास्थ्य सेवा योजनाओं का विकास, औषध आपूर्ति एवं प्रबन्ध तथा आयुर्विज्ञान शिक्षा के कार्यक्रम चलाए जाते हैं। स्वास्थ्य सेवाओं में राष्ट्रमंडल की गैर-सरकारी स्वयं सेवी संस्थाएं भी सक्रिय हैं। उदाहरण के लिए "रायल कामनवैल्थ सोसायटी फार द ब्लाइंड" अपने तरह की सबसे बड़ी अन्तरराष्ट्रीय संस्था है। इसके द्वारा प्रति वर्ष लगभग एक लाख नेत्रहीनों को नेत्रज्योति प्रदान की जाती है।(33) इसी तरह की अन्य संस्थाएं मूक-बधिरों और अपंगों के लिए भी कल्याण कार्य में रत हैं। राष्ट्रमंडल कोष के स्वास्थ्य जन शिक्षण, समुदाय विकास, स्वास्थ्य आयोजना तथा स्वास्थ्य प्रबन्धन के कई कार्यक्रम अफ्रीकी और कैरीबियाई देशों में चल रहे हैं।

---

(33) द कामनवैल्थ टुडे, राष्ट्रमंडल सचिवालय, लंदन, 1985, पृ0 30

वित्त एवं आर्थिक सहयोग

वित्त एवं आर्थिक क्षेत्र में राष्ट्रमंडलीय संस्थाएं वित्त प्रबन्ध और आर्थिक क्षेत्रों में विशेषज्ञ और विशेषज्ञता उपलब्ध कराने में सदस्य देशों की सहायता करती हैं। वित्तीय और आर्थिक मामले विकास की गति के साथ-2 जटिलतर होते जाते हैं। लेखा,लागत, कर प्रणाली, सीमाशुल्क, राजस्व, बीमा और बैंकिंग के क्षेत्रों में अब जटिलताएं इतनी बढ़ गयी हैं कि इनके प्रबन्ध के लिए सामान्य विश्वविद्यालयी शिक्षा से निपुणता प्राप्त नहीं हो सकती। साथ ही इनका महत्व इतना बढ़ गया है कि कोई देश इनमें विशेषज्ञता हासिल किये बगैर अपना काम नहीं चला सकता। राष्ट्रमंडल के ज्यादातर देश इतने छोटे और अविकसित हैं कि बाह्य सहायता और सहयोग के अभाव में इन क्षेत्रों में वे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकते। राष्ट्रमंडल कोष और राष्ट्रमंडल सचिवालय में आर्थिक मामलों का अनुभाग इन क्षेत्रों में सदस्य देशों की सहायता के लिए सदस्य देशों के सहयोग से अनेक कार्यक्रम चलाता है। इनके अन्तर्गत जरूरतमंद सदस्यों को विशेषज्ञ प्रदान किए जाते हैं। उदाहरणार्थ फिजी, किरिबेटी, टोंगा, युगांडा, सेंट किट्स-नेविस आदि देशों में आस्ट्रेलिया, भारत, सियरा लियोन, ब्रिटेन, घाना आदि के आर्थिक आयोजना विशेषज्ञ राष्ट्रमंडल कार्यक्रम के तहत सेवा कर रहे हैं। एकाउंटेंसी के क्षेत्र में एंगुइला, बारबुडा कुक द्वीप, तंजानिया और पश्चिमी समोआ में राष्ट्रमंडल विशेषज्ञ सेवारत हैं। कर अधिकारियों के प्रशिक्षण के लिए राष्ट्रमंडल कोष त्रिनिदाद एवं टोबेगो में एक केन्द्र चला रहा है।(34)

(34) कामनवेल्थ स्किल्स फार कामनवेल्थ नीड्स, राष्ट्रमंडल सचिवालय लंदन, 1985 पृ0 42

इसी तरह के प्रशिक्षण कार्यक्रम बीमा, वित्त प्रबन्ध, सीमाशुल्क एवं राजस्व मामलों में नयी तकनीकों की जानकारी के लिए चलाये जाते हैं। अन्तरराष्ट्रीय संस्थाओं जैसे विश्व बैंक और अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा दिये गए ऋणों के प्रबन्धन में भी राष्ट्रमंडल के अभिकरण सदस्य देशों की सहायता करते हैं। इन क्षेत्रों में राष्ट्रमंडल के विभिन्न अभिकरणों द्वारा सदस्यों की सहायतार्थ कई विशिष्ट अध्ययन भी कराए गये हैं। राष्ट्रमंडल के अल्प विकसित और लघुद्वीपीय देशों के लिए ये अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध हुए हैं।

विज्ञान एवं तकनीकी सहयोग

विज्ञान और तकनीकी में प्रगति सीधे तौर से देश के आर्थिक विकास से जुड़ी हुयी है। वस्तुतः यूरोपीय देशों की अति समृद्धि का सर्वाधिक प्रमुख कारण औद्योगिक क्रान्ति और विज्ञान में नये-नये अनुसंधान रहा है। राष्ट्रमंडल के विभिन्न अभिकरण विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में सदस्यों के बीच सहयोग बढ़ाने के लिए कार्यरत हैं। इस क्षेत्र में "राष्ट्रमंडल विज्ञान परिषद्" बड़ी अहम भूमिका अदा करती है। परिषद् का उद्देश्य राष्ट्रमंडल के सदस्य "राष्ट्रों की क्षमताओं में वृद्धि करना है ताकि वे विकास के मार्ग पर अग्रसर हो सकें और विज्ञान और तकनीकी का उपयोग अपने आर्थिक, सामाजिक और पर्यावरण संबंधी विकासमेंपरस्पर सहयोग के द्वारा कर सकें।"(35) 1976 से पूर्व परिषद् के कार्य सूचनापरक ही थे परन्तु उसके बाद से उसने विभिन्न देशों में प्रकल्प शुरु किये हैं। ये प्रकल्प छह क्षेत्रों में है - ऊर्जा, खनिज संसाधन, पुनः प्रयोग होने वाले प्राकृतिक

---

(35) जे० आई० फर्टाडो व आर० डब्ल्यू ओकोट-उमा "कामनवेल्थ साइन्स काउंसिल प्रोग्राम्स" कामनवैल्थ साइन्स काउंसिल, साइंस फार टेक्नोलाजी फार डिवेलपमेंट, राष्ट्रमंडल सचिवालय, लंदन 1984, पृ० 15

संसाधनों,पर्यावरण आयोजना, औद्योगिक समर्थन और विज्ञान नीति और संगठन । इन क्षेत्रों में अन्तर्गत विज्ञान परिषद् कैरीबीय वैकल्पिक ऊर्जा कार्यक्रम, अफ्रीकी ऊर्जा कार्यक्रम, एशिया व प्रशान्त क्षेत्रीय ग्रामीण तकनीकी कार्यक्रम, कैरीबियाई प्राकृतिक संसाधन कार्यक्रम, अफ्रीकी प्राकृतिक उत्पाद कार्यक्रम एशिया व प्रशान्त क्षेत्रीय मौसम विज्ञान कार्यक्रम, कैरीबीय मौसम विज्ञान कार्यक्रम, आदि प्रकल्प चला रही है ।[36] इसके अलावा स्थानीय विशेषज्ञों की प्रवीणता हेतु परिषद् एक छात्रवृत्ति योजना भी चलाती है । यह अनेक सेमिनार, बैठक, विचार-विमर्श, कार्यशाला, सर्वे एवं अनुसंधान कार्यक्रम भी आयोजित करती है जिससे नवीनतम सूचना का संवरण हो सके । ग्रामीण क्षेत्रों में विज्ञान के उपयोग के लिए राष्ट्रमंडल सचिवालय की कृषि ब्यूरो के सहयोग से परिषद् अनेक कार्यक्रम चलाती है । ब्यूरो के तत्वावधान में कृषि के विभिन्न पहलुओं जैसे पशु प्रजनन, वानिकी, फसलों की बीमारियों और कीटाणुओं पर तेरह अलग-अलग संस्थान कार्यरत हैं ।[37] दूर संचार वायु यातायात, वैमानिकी एवं मध्यवर्ती तकनीकी के विकास के क्षेत्र में राष्ट्रमंडल की अनेक संस्थाएं कार्यरत हैं । ये सभी संस्थाएं राष्ट्र मंडल देशों के बीच परस्पर सहयोग वृद्धि के लिए प्रयासरत हैं ।

संचार व दूर प्रसारण

विज्ञान व तकनीकी के विकास के परिणाम स्वरूप विश्व इतना छोटा हो गया है कि अब इसे अन्तरराष्ट्रीय गांव की संज्ञा दी जाने लगी है । इस कारण सूचना एवं संचार माध्यमों जैसे रेडियो, दूरदर्शन, टेलीफोन, टेलेक्स, टेलीप्रिंटर का महत्व अत्यधिक बढ़ गया है । नयी संचार

---

(36) वही पृ0 17-21

(37) कामनवेल्थ टुडे राष्ट्रमंडल सचिवालय, लंदन, 1985 पृ0 28

तकनीकों का प्रयोग विकसित देश सांस्कृतिक साम्राज्यवादी लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए करते रहे हैं। इसी कारण विकासशील देशों ने नयी अन्तरराष्ट्रीय सूचना एवं प्रसारण व्यवस्था की स्थापना की मांग की है। अभिप्राय यह है कि सूचना माध्यमों में आत्मनिर्भरता पाना विकासशील देशों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वस्तुतः विकास की समूची प्रक्रिया अब सूचना और संचार केन्द्रित हो गयी है। राष्ट्रमंडल कोष नयी सूचना तकनीकों में प्रवीणता और विशेषज्ञता प्राप्त करने में सदस्य राष्ट्रों की सहायता कर रहा है। आधुनिक दूर संचार प्रणालियाँ, डाक एवं तार तथा जन संचार माध्यमों जैसे पत्रकारिता, ब्राडकास्टिंग और जनसूचना माध्यमों में प्रशिक्षण की व्यवस्था राष्ट्रमंडल कोष करता है। 1983-85 के दौरान राष्ट्रमंडल कोष द्वारा आयोजित एक संचार प्रशिक्षण कार्यक्रम में एशिया और प्रशान्त क्षेत्र के देशों के 122 ब्राडकास्टिंग इंजीनियरों व तकनीशियनों ने भाग लिया।[38] मलेशिया स्थित एशिया पैसिफिक इंस्टीट्यूट आफ ब्राडकास्टिंग डिवेलपमेंट के निदेशक और पांच अन्य विशेषज्ञ राष्ट्रमंडल कोष ने प्रदान किये हैं। यहाँ विभिन्न देशों के प्रशिक्षु जन सूचना माध्यमों के विषय में विशेषज्ञता हासिल करते हैं। भारत के उपग्रह शिक्षण केन्द्र में अन्य राष्ट्रमंडल देशों के नागरिक प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। संचार, जन सूचना एवं प्रसार माध्यमों के क्षेत्र में इस तरह से राष्ट्रमंडल कोष व अन्य अभिकरण राष्ट्रमंडल सदस्यों की सहायता करते हैं।

इस तरह हम देख सकते हैं कि राष्ट्रमंडल उत्तरोत्तर न केवल कथनी के स्तर पर अपितु क्रिया एवं कर्म के स्तर पर भी तृतीय विश्वपरक दृष्टिकोण का

---

(38) वही पृ0 46

पोषक होता चला गया है। इस अध्याय में वर्णित विकास कार्यक्रम उसके क्रियात्मक रूप का परिचय देते हैं। माना कि तृतीय विश्व के विकास कार्यक्रमों में राष्ट्रमंडल की भागीदारी बहुत कम है। लेकिन यह व्यापक और विस्तृत भी है। वह इस अर्थ में कि कृषि विकास से लेकर औद्योगिक विकास तक और महिला विकास से लेकर प्रबन्ध विकास तक जितने भी क्षेत्र हैं उन सबमें राष्ट्रमंडल के विभिन्न अभिकरण किसी न किसी रूप में क्रियाशील है। इन गतिविधियों में फैलाव तो है पर इतनी सघनता, या गहनता नही कि केवल राष्ट्रमंडल कार्यक्रम से ही किसी देश में आर्थिक विकास की प्रक्रिया की गति बहुत तीव्र हो उठे। उसका प्रमुख कारण है राष्ट्रमंडल के पास साधनों की सीमितता। एक अन्य कारण --- जो सभी अंतरराष्ट्रीय संगठनों पर लागू होता है ---- है संगठन के विकसित देशों में संकल्प अथवा इच्छा की कमी। राष्ट्रमंडल के कार्यक्रम बहुआयामी है परन्तु प्रत्येक क्षेत्र में संकल्प और उसकी पूर्ति में एक खाई है। उदाहरण के तौर पर राष्ट्रमंडल की लगभग हर उच्च स्तरीय बैठक में ब्रांट आयोग की सिफारिशों को सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया परन्तु स्वयं उसके विकसित सदस्यों ने भी आधिकारिक विकास सहायता का स्वीकृत भाग अर्थात् अपने सकल राष्ट्रीय उत्पाद का 0.7 प्रतिशत अभी तक नहीं दिया है। इस तरह की अनेक विसंगतियाँ हमें मिलेंगी। फिर भी केवल इन्हीं कारणों से राष्ट्रमंडल के विकास कार्यों को छोटा कह कर नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता। यह क्या कम है कि आपाधापी, तनाव और अनेकानेक विरोधाभासों और असंगतियों से परिपूर्ण वर्तमान अन्तरराष्ट्रीय व्यवस्था में राष्ट्रमंडल चाहे छोटे स्तर पर ही सही कुछ रचनात्मक कार्यक्रम चला तो रहा है।

विकसित देश (जैसे भारत, नाइजीरिया) राष्ट्रमंडल की विकासवादी योजनाओं में योगदान कर सकेंगे । इससे निश्चय ही राष्ट्रमंडलीय विकास कार्यक्रमों में और तेजी एवं सघनता आयेगी ।

चतुर्थ अध्याय

निष्कर्ष

इतिहास का सत्य न तो व्यक्ति झुठला सकते हैं और न ही राष्ट्र । इसे झुठलाने से व्याघातपूर्ण परिवर्तन अवश्यम्भावी हो जाते हैं । काल की उपेक्षा मनुष्य नहीं कर सकता । द्वितीय विश्व युद्धोत्तर काल में अन्तरराष्ट्रीय राजनीति का प्रजातन्त्रीकरण इस संदर्भ में एक ऐतिहासिक सत्य था कि अब विश्व का एक बड़ा भाग उसमें सक्रिय भाग लेने लगा था । उसके भाग्य के नियंता कुछ शक्तिशाली देश नहीं रह गए थे अपितु अपने बारे में निर्णय लेने का अधिकार अब स्वयं विश्व के इस बड़े [illegible] के हाथ में आ गया था । परिवर्तन की यह लहर इस काल का सत्य था । कोई संस्था या राष्ट्र इसे झुठला कर निश्चिंत नहीं बैठ सकता था । इसलिए जब 1949 में तत्कालीन ब्रितानी राष्ट्रमंडल के प्रधानमंत्रियों ने अपने घोषणा-पत्र में कहा कि ब्रितानी राष्ट्रमंडल अब केवल राष्ट्रमंडल कहलाएगा जो समान रूप से स्वैच्छिक सहयोग करते हुए समान राष्ट्रों का एक सहकार होगा तो केवल वे इस कालगत सत्य की पुष्टि ही कर रहे थे । अगर यह परिवर्तन नहीं होता तो राष्ट्रमंडल कम से कम उस रूप में तो जिन्दा नहीं रहता जिस रूप में आज हम इसे देख रहे हैं । यह परिवर्तन मात्र नाम का परिवर्तन नहीं था । वस्तुतः यह मानसिकता और सोच का परिवर्तन था । अर्थात् राष्ट्रमंडल के गौरवर्णीय सदस्य यह स्वीकारने को तैयार हो गये थे कि अब उसे विशिष्ट वर्ग की एक विशिष्ट संस्था के रूप में जिन्दा नहीं रखा जा सकता । अपने इस चारित्रिक बदलाव के कारण ही राष्ट्रमंडल अपने स्वरूप को बहुआयामी और विस्तृत कर पाया जिसके कारण विश्व के विभिन्न भागों के राष्ट्र इसमें शरीक हुए । अफ्रीकी राष्ट्रों द्वारा राष्ट्रमंडल की सदस्यता ग्रहण करने के साथ ही इसमें दो परिवर्तन निश्चित रूप से आए । एक तो गोरे देशों का बहुमत इसमें से समाप्त हो गया और दूसरे इसकी मानसिकता पूरी तरह से गैर उपनिवेशवादी हो गयी

और यह पूर्व उपनिवेशों के राष्ट्रों का सहकार न होकर नवोदित और विकासशील देशों के सहकार का प्रतीक बन गया । इसमें उल्लेखनीय है कि परिवर्तन की इस प्रक्रिया में राष्ट्रमंडल के गोरे एवं विकसित देशों ने कई बार अनिच्छा दिखाई । उदाहरणार्थ जब राष्ट्रमंडल सचिवालय बनाने का प्रश्न आया तो ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड ने इसे अनिच्छा से स्वीकार किया । यह पहले ही सिद्ध किया जा चुका है कि किस तरह राष्ट्रमंडल शनैः-शनैः स्वयं को तृतीय विश्व के संदर्भों और लक्ष्यों से अपने आप को जोड़ता चलता गया ।

परिवर्तन की प्रक्रिया सामान्यतः दो स्तरों पर चलती है । पहला परिवर्तन होता है मानसिकता या विचारों का परिवर्तन और दूसरे स्तर पर गतिविध्यात्मक अथवा कार्यात्मक परिवर्तन आता है । यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि जहाँ तक विचारों के स्तर पर परिवर्तन का सवाल है राष्ट्रमंडल परिवर्तन के चक्र को लगभग पूरा कर चुका है । यह बात पूर्व अध्यायों में किए गए विश्लेषण से भी स्पष्ट हुई है । लेकिन इस बात का ध्यान रखना होगा कि हम यहाँ केवल आर्थिक क्षेत्र की चर्चा कर रहे हैं न कि राजनीतिक क्षेत्र की क्योंकि राजनीतिक स्तर पर अभी राष्ट्रमंडल में गंभीर विचारात्मक असंगतियाँ और विरोधाभास विद्यमान हैं । दक्षिण अफ्रीका का सवाल इसका एक अन्यतम उदाहरण है । अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक सवालों पर राष्ट्रमंडल आज तृतीय विश्व की आवाज को प्रतिध्वनित करता है । वस्तुतः इस सन्दर्भ में राष्ट्रमंडल और तृतीय विश्व के विचार एकरूप हो गए हैं । मैकिन्टायर आयोग और क्लार्क आयोग सहित राष्ट्रमंडल द्वारा गठित अन्य आयोगों व समितियों की रपटें और राष्ट्रमंडल शिखर सम्मेलनों और अन्यान्य बैठकों के बाद जारी घोषणा-पत्र इसकी पुष्टि करते हैं । आज राष्ट्रमंडल का परिपेक्ष्य तृतीय विश्व का नजरिया बन गया है । राष्ट्रमंडल आज स्वीकार करता है कि विश्व की वर्तमान आर्थिक

व्यवस्था असमानता और असन्तुलन की पोषक है । इससे विश्व में तनाव पैदा होते हैं ।(1) जब तक ये असमानताएं कम नहीं होती विश्व में शान्ति की स्थापना एक स्वप्न ही बना रहेगा । राष्ट्रमंडल आज महसूस करता है कि एक "अधिक न्यायोचित आर्थिक व्यवस्था की स्थापना के लिए अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक संबंधों में संरचनात्मक और संस्थात्मक परिवर्तन" करने होंगे ।(2) राष्ट्रमंडल अब नयी अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की मांग ही नहीं करता अपितु उसके लिए कृत संकल्प है ।

हम कह सकते हैं कि विचार और सोच के स्तर पर राष्ट्रमंडल ने स्वयं को पूरी तरह से तृतीय विश्व के साथ जोड़ा है । नयी अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की स्थापना के जिहाद में राष्ट्रमंडल तृतीय विश्व के विकासशील देशों के साथ है । दोनों की आकांक्षाओं और लक्ष्यों में आज कोई महत्त्वपूर्ण विभेद नहीं है । दोनों के आर्थिक परिप्रेक्ष्यों में अद्भुत साम्य है ।

लेकिन संकल्प और विचारों का यह ऐक्य गतिविध्यात्मक स्तर पर पूरी तरह नहीं दिखाई देता । यह सही है कि राष्ट्रमंडल ने नयी अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की मांग की है परन्तु उसके सदस्य विकसित राष्ट्रों ने वैचारिक स्तर पर इसके विभिन्न पहलुओं पर सम्मति देते हुए भी आचरण के स्तर पर स्वयं उन्हें लागू नहीं किया है । सरलीकृत तकनीकी हस्तांतरण व्यवस्था, आधिकारिक विकास सहायता में कुल राष्ट्रीय उत्पाद

---

(1) द डिक्लेरेशन आफ कामनवेल्थ प्रिंसिपल्स, राष्ट्रमंडल सचिवालय, लंदन, 1985

(2) राष्ट्रमंडल के मेलबोर्न शिखर सम्मेलन के बाद जारी घोषणा पत्र राष्ट्रमंडल सचिवालय, लंदन, अक्टूबर, 1981 पृ० 13

का 0·7 अंश देना और अन्तरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों के स्वरूप में परिवर्तन इन देशों के वचन और आचरण के अन्तर को स्पष्ट रूप से दिखाते हैं। जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि ये असंगतियां कोई राष्ट्रमंडल की ही विशिष्टता नहीं है। वस्तुतः यह तो अन्तरराष्ट्रीय राजनीति के चारित्रिक वैशिष्ट्य के दृष्टान्त हैं। राष्ट्रमंडल कोई संप्रभु सत्ताधारण करने वाली संस्था नहीं है जो इन देशों को कुछ करने के लिए बाध्य कर सके। वास्तव में वर्तमान राष्ट्र-राज्य व्यवस्था में ऐसी किसी भी संप्रभु संस्था का अस्तित्व संभव ही नहीं है। तो इसके लिए राष्ट्रमंडल को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। वह तो उन विसंगतियों और विरोधाभासों को ही भर रहा है जो आज विश्व स्तर पर विद्यमान हैं।

इन परिस्थितियों में भी राष्ट्रमंडल एक अनूठा कार्य कर रहा है। वह है अनेकानेक विकास कार्यक्रमों का संचालन। अर्थात् गतिविध्यात्मक स्तर पर भी राष्ट्रमंडल का रिकार्ड शून्य नहीं है। वस्तुतः अपने विकास कार्यक्रमों द्वारा राष्ट्रमंडल तृतीय विश्व के आर्थिक जिहाद में एक विशिष्ट भूमिका निभा रहा है। इन विकास कार्यक्रमों की विस्तृत चर्चा तृतीय अध्याय में की जा चुकी है। यद्यपि ये विकास कार्यक्रम एक सीमित स्तर पर चल रहे हैं। इनका बजट भी काफी कम है। उदाहरण के लिए 1984-85 के दौरान विकास कार्यक्रमों पर करीब दो सौ लाख पाउण्ड खर्च किये गए। यह अपेक्षाकृत एक छोटी राशि है। पर इससे इन कार्यक्रमों का महत्व कम नहीं हो जाता। यह बात ही अपने आप में बड़ी है कि राष्ट्रमंडल जैसी अन्तरराष्ट्रीय संस्था आर्थिक विकास के कार्यक्रम चला तो रही है। दूसरे भारत जैसे विशाल देश में राष्ट्रमंडल के इन कार्यक्रमों के महत्व को आंकना थोड़ा कठिन है। लेकिन

नौरु, तुवालु, सेंट क्रिस्टोफर-नेविस, सेशिल्स और किरीबटी जैसे देशों जिनकी कि जनसंख्या क्रमश: आठ हजार, आठ हजार तिरेपन हजार, चौसठ हजार और साठ हजार है-- के विकास के लिए ये कार्यक्रम अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और निर्णायक हैं। इन देशों में राष्ट्रमंडल द्वारा भेजा गया एक विशेषज्ञ की अर्थव्यवस्था के एक क्षेत्र के लिए परिवर्तन के सूत्रधार का काम कर सकता है। कहने का अभिप्राय यह कि ये कार्यक्रम राष्ट्रमंडल के अधिकांश सदस्य देशों-जोकि आकार और जनसंख्या में अत्यन्त लघु हैं - की दृष्टि से उतने छोटे भी नहीं हैं। वस्तुत: राष्ट्रमंडल का यह कार्य प्रशंसनीय और स्तुत्य है।

इस दिशा में राष्ट्रमंडल द्वारा कार्य विस्तार की अनन्त संभावनाएं हैं। यदि राष्ट्रमंडल के सदस्य देश दृढ़ इच्छा शक्ति का परिचय दें तो राष्ट्रमंडल गतिविध्यात्मक रूप से तृतीय विश्व के विकास में एक अत्यन्त प्रभावी और सार्थक भूमिका अदा कर सकता है। इस दिशा में सुझाव दिया जा सकता है कि राष्ट्रमंडल के विकसित के सदस्य राष्ट्र विकासशील देशों को जो सहायता देते हैं वह अभी आमतौर पर द्विपक्षीय संबंधों के आधार पर दी जाती है। अगर यह सहायता राष्ट्रमंडलीय स्तर पर बहुपक्षीय आधार पर दी जा सके तो राष्ट्रमंडल अपने विकास कार्यक्रमों को और विस्तृत तथा सघन रूप से चला सकता है। यद्यपि ऐसा होना इतना सरल नहीं है क्योंकि सहायता देने वाले देशों के हित इसमें आड़े आएंगे। फिर भी इस दिशा में अगर गंभीर राजनयिक प्रयास किए जाए तो कुछ सफलता अवश्य मिल सकती है। इसके लिए राष्ट्रमंडल के अपेक्षाकृत विकसित और प्रभावशाली देशों जैसे कि भारत, नाइजीरिया आदि को समन्वित प्रयास करने होंगे।

राष्ट्रमंडल एक विशिष्ट अन्तरराष्ट्रीय मंच है। क्योंकि इसके सदस्यों में विकसित राष्ट्र भी हैं और विकासशील राष्ट्र भी। अपनी इस

विशिष्टता के कारण ही इसमें विकसित और विकासशील दुनिया के बीच एक सेतु की भूमिका अदा करने की क्षमता एवं संभावना है। अपनी इस भूमिका को अगर राष्ट्रमंडल गहराई से खोजपाता है और अदा कर पाता है तो यह विश्व के लिए अत्यन्त सुखप्रद होगा। शायद इससे अवरुद्ध उत्तर-दक्षिण वार्ता पुन: अनुप्राणित हो जाएं और नई अंतराष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के निर्माण की दिशा में कुछ आशाएं बंधने लगे। यदि राष्ट्रमंडल के प्रभावाधीन ऐसा कुछ हो सका तो राष्ट्रमंडल की प्रतिष्ठा अन्तरराष्ट्रीय सहयोग की ऐतिहासिक नियति के साथ सदा के लिए जुड़ जाएगी।

सन्दर्भ सूची

प्राथमिक स्रोत

एक्शन फार इण्डस्ट्री : द इण्डस्ट्रियल डिवेलपमेंट यूनिट, राष्ट्रमंडल सचिवालय, लंदन, सितम्बर 1981

एग्रीकल्चरल रिसर्च एंड डिवेलपमेंट इन द एशिया पैसिफिक कामनवेल्थ : रिपोर्ट आफ द एक्सपर्ट स्टडी ग्रुप, राष्ट्रमंडल सचिवालय, लंदन, अप्रैल, 1982

बेसिक इकनामिक एंड सोशल डेटा आन मेम्बर कन्ट्रीज, राष्ट्रमंडल सचिवालय, लंदन, जुलाई 1986

कामनवेल्थ हेड्स आफ गवर्नमेन्ट : द मेलबोर्न कम्यूनिके अक्टूबर, 1981, राष्ट्रमंडल सचिवालय, लंदन, अक्टूबर 1981

कामनवेल्थ हेड्स आफ गवर्नमेन्ट : द न्यू दिल्ली कम्यूनिके नवंबर 1983, राष्ट्रमंडल सचिवालय, लंदन, नवंबर 1983

कामनवेल्थ हेड्स आफ गवर्नमेन्ट : द नसाउ कम्यूनिके अक्टूबर 1985 राष्ट्रमंडल सचिवालय, लंदन, अक्टूबर 1985

को-औपरेशन इन इकनामिक अफेयर्स, राष्ट्रमंडल सचिवालय, लंदन, अक्टूबर, 1985

को-आपरेशन फार डिवेलपमेन्ट, राष्ट्रमंडल सचिवालय, लंदन अप्रैल, 1983

फूड प्रोडक्शन एंड रूरल डिवेलपमेंट, राष्ट्रमंडल सचिवालय, लंदन, फरवरी, 1936

हैल्पिंग आफ द कामनवेल्थ : वुमैन एंड डिवेलपमेंट, राष्ट्रमंडल

सचिवालय, लंदन, सितम्बर 1981

जवाहर लाल नेहरु, स्वाधीनता और उसके बाद(भाषणों का संग्रह)

इलाहाबाद, 1954

मैनपावर ट्रेनिंग, राष्ट्रमंडल सचिवालय, लंदन, फरवरी, 1980

मोहनदास करमचन्द गांधी, द कलैक्टेड वर्क्स आफ महात्मा गांधी

प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार
नयी दिल्ली, 1971

न्यू दिल्ली स्टेटमैन्ट आन इकनामिक एक्शन, राष्ट्रमंडल सचिवालय
लंदन, मार्च, 1984

नार्थ साउथ इश्यूज एट मेलबोर्न, राष्ट्रमंडल सचिवालय,

लंदन, अक्टूबर, 1981

प्रोग्राम फार पीस एंड इंटरनेशनल को आपरेशन, कैरो,

अक्टूबर, 1964

रिपोर्ट आफ द मीटिंग आफ कामनवेल्थ मिनिस्टर्स आफ

एग्रीकल्चर फूड एंड रूरल डिवलपमेंट, राष्ट्रमंडल सचिवालय
लंदन, नवंबर, 1981

रिपोर्ट आफ कामनवेल्थ मिनिस्टर्स आफ एग्रीकल्चर, फूड

एंड रूरल डिवेलपमेंट रोम, राष्ट्रमंडल सचिवालय,
लंदन, नवंबर, 1983

साइंस फार टैक्नोलोजी फार डिवलपमेन्ट : एन एक्सपैंडेड प्रोग्राम आफ साइंटिफिक कों-आपरेशन इन द कामनवेल्थ, रिपोर्ट आफ द एक्सपर्ट ग्रुप (बैक ग्राउन्ड पेपर्स) राष्ट्रमंडल सचिवालय, लंदन, दिसम्बर, 1984

श्रीदत्त रामफल, वन वर्ल्ड टू शेयर, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1980

द कामन फंड, रिपोर्ट आफ ए कामनवेल्थ टैक्नीकल ग्रुप, राष्ट्रमंडल सचिवालय, लंदन, 1977

द कामनवेल्थ एट ए ग्लांस, राष्ट्रमंडल सचिवालय, लंदन, फरवरी, 1985

द कामनवेल्थ टुडे, राष्ट्रमंडल सचिवालय, लंदन अगस्त, 1985

द कामनवेल्थ फैक्ट बुक, राष्ट्रमंडल सचिवालय, लंदन, 1985

द डिक्लैरेशन आफ कामनवेल्थ प्रिंसिपल्स, राष्ट्रमंडल सचिवालय, लंदन, अक्टूबर, 1982

द वर्ल्ड इकनामिक क्राइसिस : ए कामनवेल्थ पर्सपेक्टिव, राष्ट्रमंडल सचिवालय, लंदन, 1980

थर्ड मीटिंग आफ कामनवेल्थ मिनिस्टर्स आफ एग्रीकल्चर, फूड एंड रूरल डिवेलपमेंट, ढाका, बांग्लादेश, राष्ट्रमंडल सचिवालय लंदन, फरवरी, 1981

टुवर्ड्स ए न्यू इंटरनेशनल इकनामिक आर्डर : रिपोर्ट बाई ए कामनवैल्थ एक्सपर्ट्स ग्रुप, राष्ट्रमंडल सचिवालय, लंदन अगस्त, 1975

टुवर्ड्स ए न्यू ब्रेटन वुड्स, सलेक्टेड बैकग्राउन्ड पेपर्स भाग-1, राष्ट्रमंडल सचिवालय, लंदन, 1983

टैग : कन्सल्टैन्ट्स टू द कामनवेल्थ, राष्ट्रमंडल सचिवालय, लंदन, 1985

वलनरेबिलिटी : स्माल स्टेट्स इन द ग्लोबल सोसायटी, रिपोर्ट आफ ए कामनवेल्थ कन्सल्टेटिव ग्रुप, राष्ट्रमंडल सचिवालय लंदन, अगस्त, 1985

द्वितीय स्रोत

पुस्तकें

ए० जे० दस्तूर, इंडिया एंड द कामनवेल्थ, अहमदाबाद, 1960

ए० एल० बर्ट, द ब्रिटिश एम्पायर एंड द कामनवेल्थ बोस्टन, 1956

आर्नोल्ड स्मिथ, स्टिचिज इन टाइम : द कामनवेल्थ इन वर्ल्ड पालिटिक्स, आन्द्रे ड्यूश्चे लि० लंदन, 1918

ए० जे० आर ग्रूम व पाल टेलर (संपा०) द कामनवेल्थ इन द 1980 ज, मैकमिलन प्रेस लि० हांगकांग, 1984

एन्ड्रयू वाकर, द कामनवेल्थ : ए न्यू लुक, पेरगामन, आक्सफोर्ड, 1970

एन्ड्रयू वाकर, द माडर्न कामनवेल्थ, लांगमैन, लंदन, 1977

बी० एस० एन० मूर्ति, इंडिया एंड द कामनवेल्थ, नयी दिल्ली, 1953

सी० डी० देशमुख, द कामनवेल्थ एज इंडिया सीज इट, कैम्ब्रिज, 1962

सी० आर० एटली, एम्पायर इन्टू कामनवेल्थ, लंदन, 1961

कालिन क्रास, द फाल आफ द ब्रिटिश एम्पायर 1918-1968, होडर एंड स्टाउटन, लंदन, 1968

जे० डी० बी मिलर, सर्वे आफ कामनवेल्थ अफेयर्स : प्राबलम्स आफ एक्सपेन्शन एंड आट्रीशन, 1953-1969, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1974

डेनिस जड व पीटर स्लिन, द इवोल्यूशन आफ द माडर्न कामनवेल्थ, लंदन, 1982

डेरेक इन्ग्रैम, द कामनवेल्थ चैलेन्ज, लंदन, 1962

डेरेक इन्ग्रेम, द कामनवेल्थ फार ए कलर ब्लाइंड वर्ल्ड, लंदन, 1965

जी0 आर्नोल्ड, टुवर्ड्स वर्ल्ड पीस एंड मल्टीलैटरल कामनवेल्थ, लंदन, 1964

जी0 आर्नोल्ड, इकनामिक को-आपरेशन इन द कामनवेल्थ,लंदन, 1967

एच0 विकटर वाइजमैन, ब्रिटेन एंड द कामनवेल्थ, लंदन, 1965

आइवर जेनिन्गस, द ब्रिटिश कामनवेल्थ आफ नेशन्स, लंदन, 1961

जे0 बी0 वाटसन, एम्पायर टू कामनवेल्थ 1919 टू 1970, जे0 एम0 डेन्ट एंड सन्स, लंदन, 1971

के0 सी0 व्हेयर, द स्टैटट्यूट आफ वैस्टमिनिस्टर एंड डामिनियन स्टेट्स, लंदन, 1949

के0 पी0 मिश्र(संपा0) नान एलाइनमेन्ट डायनामिक्स एंड फ्रन्टियर्स विकास पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, 1982

के0 पी0 मिश्र व के0 आर0 नारायणन, नान एलाइनमेंट इन कन्टैम्पररी इंटरनेशनल रिलेशंस, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा0 लि0, नयी दिल्ली, 1981

लार्ड के0 सी0, द फ्यूचर आफ द कामनवेल्थ, लंदन, 1964

एम0 एस0 राजन, पोस्ट-वार ट्रान्सफार्मेशन आफ द
कामनवेल्थ, बंबई, 1963

एम0 मार्गरेट बाल, द, 'ओपन' कामनवेल्थ, ड्यूक यूनिवर्सिटी
प्रेस, अमेरिका, 1971

निकोलस मेन्सर्ग, द कामनवेल्थ एक्सपीरियंस, वाइडनफील्ड
एंड निकलसन, लंदन, 1969

पी0 एन0 एस0 मेन्सर्ग (व अन्य) कामनवेल्थ पर्सपेक्टिस,
लंदन व डर्बन, 1958

पी0 एन0 एस0 मेन्सर्ग, द मल्टीरेसियल कामनवेल्थ, लंदन, 1955

पैट्रिक गोर्डन वाकर, द कामनवेल्थ, लंदन, 1962

रिचर्ड फाक वगैरह (संपा0) टुवर्ड ए जस्ट वर्ल्ड आर्डर,
पहला भाग, वेस्टव्यू प्रेस बाउन्डर, कोलोराडो,
1982

स्टूट फोर्ड ह विंगफील्ड, बियोन्ड एम्पायर, लंदन, 1964

सुभाष चन्द्र बोस, द इंडियन स्ट्रगल 1920-42,
एशिया पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, 1969

टाम सोपर, इवाल्विंग कामनवेल्थ, लंदन, 1965

विपिन चन्द्र, अमलेश त्रिपाठी व वरुण दे, स्वतंत्रता संग्राम
नेशनल बुक ट्रस्ट आफ इंडिया, दिल्ली, 1972

डब्ल्यू बी० हैमिल्टन(व अन्य), ए डीकेड आफ द कामनवेल्थ, 1955-64
डर्बन, एन० सी० 1966

विलियम डेल, द माडर्न कामनवेल्थ, बटरवर्थ, लंदन, 1983

ज़ेलमान कावन, द ब्रिटिश कामनवेल्थ इन द चेन्जिंग वर्ल्ड, लंदन, 1965

लेख

"एक्ट फास्ट आन डेट क्राइसिस अर्जेस कामनवेल्थ एक्सपर्ट ग्रुप"
कामनवेल्थ करेन्ट्स, राष्ट्रमंडल सचिवालय, लंदन,
अक्टूबर, 1984 पृ0 1

"एशिया पैसिफिक नीड्स न्यू एक्शन प्लान", कामनवेल्थ करेन्ट्स
लंदन, दिसम्बर, 1982 पृ0 3

आर्नोल्ड स्मिथ, "द नीड फार द कामनवेल्थ :
रिसिस्टिंग ए फ्रैग्मेन्टेड वर्ल्ड," राउन्ड टेबल, जुलाई, 1966

सी0 ई0 कैरिंगटन, "ए न्यू थ्योरी आफ कामनवेल्थ"
इन्टरनेशनल एफेयर्स(लंदन), अप्रैल, 1955

"सी0 एफ0 टी0 सी0 गेट्स नीअरली £ 23 मिलियन"
कामनवेल्थ करेन्ट्स, लंदन, अगस्त, 1984 पृ0

"कामनवेल्थ फार्मूला टू हेल्प द वर्ल्ड नेगोशिस्ट",
कामनवेल्थ करेन्ट्स, लंदन, सितम्बर, 1982 पृ0 4

"कामनवेल्थ एंड क्राइसिस" राउन्ड टेबल, मार्च, 1967

"कामनवेल्थ प्रजेन्ट एंड फ्यूचर", कन्टैम्परेरी रिव्यू,(लंदन), जुलाई,1963

"कामनवेल्थ रिपोर्ट अर्जेस फाइनैन्स एंड ट्रेड रिफार्म्स"
कामनवेल्थ करेन्ट्स, लंदन, अक्टूबर, 1983 पृ0 3

"कामनवेल्थ डिवेलपमेन्ट को-आपरेशन - इन्वेस्टमेंट सेन्स"
कामनवेल्थ करेन्ट्स, लंदन, अगस्त, 1984 पृ0 10

"कामनवेल्थ कैनरिस्टार्ट नार्थ-साउथ डायलाग"-फा"
कामनवेल्थ करेन्ट्स, लंदन, जून, 1984 पृ0 7

"फाइनैन्स मिनिस्टर्स पाइंट टुवर्ड्स न्यू दिल्ली",
कामनवेल्थ करेन्ट्स, लंदन, दिसम्बर, 1983 पृ0 5

"फर्म फ्यूचर फार सी0 एफ0 टी0 सी0"
कामनवेल्थ करेन्ट्स, लंदन, दिसम्बर, 1983 पृ0 6

हेडले बल, "व्हाट इज़ कामनवेल्थ ?"
वर्ल्ड पालिटिक्स (प्रिन्सटन) जुलाई, 1959

"इंटरनैशनल इकनामिक रिफार्म : मिनिस्टर्स चार्ट कामनवेल्थ कोर्स," *कामनवेल्थ करेन्ट्स*, लंदन, जून, 1984 पृ0 4

"ला, फाइनेन्स, हेल्थ : मेजर टाक्स वर्ल्ड"
कामनवेल्थ करेन्ट्स, लंदन, अप्रैल, 1986 पृ0 1

एम0 एस0 राजन, "इंडिया एंड द कामनवेल्थ"
इंडिया क्वाटरली, जनवरी-मार्च, 1960

महरोत्रा, एस0 आर0, "वाइ इंडिया स्टेड इन द कामनवेल्थ,"
कामनवेल्थ इंसीट्यूट जरनल (लंदन) अक्टूबर, 1963

"मिनिस्टर्स बूस्ट कामनवेल्थ इण्डस्ट्री यूनिट,"
कामनवेल्थ करेन्ट्स, लंदन अक्टूबर, 1984 पृ0 4

एस0 सी0 गंगल, "इंडिया ब्रिटेन एंड द कामनवेल्थ," इंडियन स्कूल आफ इंटरनेशनल स्टडीज, नयी दिल्ली, 1966

"सेक्रेट्रियट : वाइड रंगल ट्रेनिंग," कामनवेल्थ करेन्ट्स लंदन, अक्टूबर, 1983 पृ0 10

"ट्रेड : टुवर्ड्स न्यू राउन्ड," कामनवेल्थ करेन्ट्स लंदन, जून, 1986 पृ0 2

"द फ्यूचर आफ द कामनवेल्थ," राउन्ड टेबल, जून, 1967

समाचार पत्र:

डेली टेलीग्राफ(लंदन)

द गार्डियन(लंदन)

द टाइम्स (लंदन)

इंडियन एक्सप्रेस(नयी दिल्ली)

द हिन्दू (मद्रास)

द हिन्दुस्तान टाइम्स(नयी दिल्ली)

द स्टेट्समैन (नयी दिल्ली)

द टाइम्स आफ इंडिया (नयी दिल्ली)